# मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम

लेखक एवं प्रकाशक

**धर्मपाल कपूर**

बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,

पंचकूला-134112 (हरियाणा)

फोन : 0172-2567845

**संस्करण : 2015**
**प्रतियाँ : 1000**

**धर्मपाल कपूर**
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

टंकण एवं संयोजन : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. +91-94683 40497**
मुद्रक : **यू०आर०बी० प्रिंटिंग प्रैस, शैड नं. 2, रतपुर कॉलोनी, पिंजौर,**
**मो. 9466111730, 9466112730**

# भूमिका

हम देखते हैं कि किसी न किसी देश की कोई न कोई विशेषता होती है। जब हम भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करते हैं तो पता चलता है कि जब इस देश पर विपत्तियों के बादल मंडराने लगते हैं तो सज्जनों की रक्षा और दुष्टों के विनाश के लिए किसी न किसी महापुरुष का आविर्भाव होता है। इसी प्रकार जब जनता रावण के अत्याचारों से तंग आ गई थी तो राक्षसों के विनाश के लिये मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का प्रादुर्भाव हुआ। जैसे तुलसीदास लिखते हैं –

**जब जब होई धरम कै हानी। बाढ़हि असुर अधम अभिमानी।**
**तब तब प्रभु धरि विविध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।**

जब जब धर्म का ह्रास होता है और नीच, अभिमानी, राक्षस बढ़ जाते हैं। तब तब कृपानिधान प्रभु भाँति-भाँति के शरीर धारण कर सज्जनों की पीड़ा हरते हैं। –रामचरितमानस (बालकाण्ड)

मेरी प्रिय आत्माओ! तुलसीदास जी के कहने का भाव यह है कि प्रभु का अवतार होता है ताकि दुष्ट का नाश हो और सज्जनों की रक्षा हो। वस्तुतः प्रभु का अवतार कभी नहीं होता अपितु किसी न किसी महामानव का प्रादुर्भाव होता है और अज्ञानवश लोग उसे अवतार कहते हैं। जैसे एक कवि के शब्दों में –

**जन्म मरण से रहित है निश्चय वह करतार।**
**नियमबद्ध वह प्रभु है लेता नहीं अवतार।।**

चाहे कुछ भी हो मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और योगिराज श्रीकृष्ण भारतीय इतिहास के दो जाज्वल्यमान रत्न है क्योंकि दोनों ही महापुरुषों का जीवन पावन एवं पवित्र था। प्रस्तुत पुस्तक में मैंने संक्षिप्त में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का जीवन चरित्र प्रस्तुत किया है।

लेकिन आप भी इस रूहानी गुलदस्ते रूपी मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की संक्षिप्त जीवनी के फूलों को देखिये और झूम-झूम कर आनंद विभोर हो जाइए। प्रस्तुत पुस्तक को मैंने सच्ची लगन एवं कड़ी मेहनत के पश्चात् लिखा है ताकि इस महामानव के संस्कार नई पीढ़ी

तक पहुँचे । इसी प्रेरणा से इस पुस्तक की रचना की गई है ।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में मुझे सर्वश्री नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' जी, रोशन लाल अग्रवाल जी, जय किशन जी, नरेश बंसल जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है । अतः इन मित्रों का स्तवन न करना मेरी कृतघ्नता होगी । विशेषतः श्री नरेन्द्र आहूजा 'विवेक' जी ने इस पुस्तक के सम्पादन में विशेष योगदान दिया है । मुझे यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि उनके बिना प्रस्तुत पुस्तक का वर्तमान रूप में संयोजन न हो पाता ।

जिस अचिंत्य शक्ति प्रभु की असीम अनुकम्पा से मैं अपने संकल्प को मूर्तरूप दे सका उसका भी कोटि-कोटि धन्यवाद करता हूँ । मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है । परन्तु अल्पज्ञ व अपूर्ण होने के कारण फिर भी यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा ।

मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्त्ताओं का भी अत्यन्त धन्यवादी हूँ जिनकी कृतियों से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं ।

धर्म पाल कपूर

**(धर्मपाल कपूर)**
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

तिथि : 15-6-2015

# पुस्तक के विषय में

वाल्मीकि रामायण पर आधारित 'मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम' के संक्षिप्त चरित्र की यह पुस्तक निश्चित रूप से लेखक श्री धर्मपाल कपूर का एक सफल प्रयास है। भारतीय जनमानस के जन-जन के मन में बसी आर्य पुरुष मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम की छवि को बड़े सरल सहज ग्राह्य शब्दों के माध्यम से एक विराट व्यक्तित्व को गागर में सागर भरते हुए लिखने का प्रयास इस पुस्तक के माध्यम से किया गया है।

मर्यादाओं में बंधे सत्य सिद्धान्तों पर चट्टान के सदृश अडिग, आर्य वैदिक सिद्धान्तों के पालक, बुराइयों पर अच्छाइयों की सदैव विजय के प्रतीक मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का जीवन चरित्र हम सभी के लिए निश्चित रूप से अनुकरणीय है। इस राम चरित्र का अनुकरण करने के लिए इसका जानना अत्यंत आवश्यक हो जाता है प्रस्तुत पुस्तक उस विराट जीवनचरित्र का झरोखा खोल देती है जिससे आती सत्य के प्रकाश की किरणें हमारे जीवन के अंधकार की बड़ी से बड़ी चट्टानों को बड़ी सहजता से तोड़ देने में पूर्णतया सक्षम है। राम चरित्र को अपने मनमन्दिर में बसा कर आठ चक्रों और नव द्वारों से बने अपने मनुष्य शरीर रूपी अयोध्या नगरी के मन में ही भव्य राम मंदिर का निर्माण कर सकते हैं।

पुस्तक के लेखक श्री धर्मपाल कपूर ने कुछ उपयुक्त स्थानों जैसे शूर्पणखा का नाक काटना, हनुमान विद्वान् या वानर हनुमार द्वारा पर्वत उठा लाना, हनुमान द्वारा लंका दहन या अंगद का पैर जमाना पर भक्तिभाव आधारित तुलसीकृत रामचरितमानस और वाल्मीकि रामायण की तुलनात्मक प्रस्तुति दी है। आर्य सिद्धान्तों के पालन मर्यादाओं से बंधे, सत्य धर्म पर अडिग श्रीराम के अनुकरणीय जीवन चरित्र से पाठक आज भी अपनी किसी भी व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक समस्या का समाधान बड़ी सहजता से ढूंढ सकते हैं।

लेकिन एक परिवर्तन करना होगा कि राम नाम जपते समय 'जिस विधि राखे राम' की जगह 'जिस विधि रहते राम' करना होगा और रामचरित्र को अपने जीवन में उतारने का संकल्प लेना होगा ।

इन्हीं शब्दों के साथ एक पठनीय संग्रहणीय और अनुकरणीय पुस्तक सुधि पाठकों के लिए लेखक श्री धर्मपाल कपूर द्वारा रचित पुस्तकों के गुलदस्ते का महकता पुष्प जिसके लिए लेखक को कोटिशः बधाई ।

**नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'**
602 जी०एच० - 53
सैक्टर 20, पंचकूला (हरि०)
मोबाइल : 09467608686

# विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और इसका मूल्य सदुपयोग है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

**धर्मपाल कपूर**
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 0-9356301618

# विषयसूची


| क्र.सं. | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| 1. | मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम | 1 |
| 2. | जन्म और शिक्षा | 3 |
| 3. | विश्वामित्र का आगमन और ताड़कावध | 4 |
| 4. | मरीच, सुबाहु का पराभव व अहल्या का उद्धार | 8 |
| 5. | धनुष भंग और विवाह | 11 |
| 6. | राज्याभिषेक | 16 |
| 7. | रंग में भंग | 18 |
| 8. | कौशल्या को सांत्वना और सीता व लक्ष्मण भी साथ | 23 |
| 9. | पिताजी से अंतिम भेंट | 28 |
| 10. | वन की ओर और गुहनिषाद से भेंट | 32 |
| 11. | चित्रकूट में और श्रीराम को वापिस लाने के..... | 36 |
| 12. | राक्षसों के संहार की प्रतिज्ञा और शूर्पणखा को दण्ड | 42 |
| 13. | सीता की खोज | 50 |
| 14. | सुग्रीम से मैत्री | 52 |
| 15. | बाली वध और हनुमान द्वारा सीता की खोज | 53 |
| 16. | विभीषण की शरणागति और सेतु-निर्माण | 60 |
| 17. | अंगद का दौत्यकर्म और युद्ध की घोषणा | 63 |
| 18. | रावण से युद्ध और उसकी पराजय | 66 |
| 19. | कुम्भकर्ण का पराक्रम | 67 |
| 20. | मेघनाद का रणकौशल और वध | 70 |
| 21. | रावण से युद्ध और उसकी मृत्यु | 71 |
| 22. | सीता की अग्नि परीक्षा | 74 |
| 23. | अयोध्या वापिसी और भरतमिलाप | 75 |
| 24. | राम राज्य | 78 |

# 1. मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम

इक्ष्वाकु अयोध्या के प्रथम राजा थे। इसलिये ही इस कुल का नाम इक्ष्वाकुवंश पड़ा। इक्ष्वाकु के पुत्र का नाम कुक्षि था। कुक्षि से विकुक्षि का जन्म हुआ। विकुक्षि के पुत्र का नाम वाण था। वाण से अनरण्य हुए, अनरण्य से पृथु हुए और पृथु के त्रिशंकु नामक युवानाश्व का जन्म हुआ। युवानाश्व से मान्धाता हुए। मान्धाता से सुसन्धि हुए। सुसन्धि के दो पुत्र हुए—देवसन्धि और प्रसेनजिता देवसन्धि से भरत हुए जिनके नाम से आर्यावर्त से इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

भरत के असित हुये, असित से सगर हुये, सगर से असमंज और असमंज के पुत्र अंशुमान हुए। अशुमान के दिलीप एवं दिलीप के पुत्र भगीरथ हुए। भगीरथ के पुत्र ककुत्स्थ और ककुत्स्थ से रघु का जन्म हुआ। जिसके नाम पर इस वंश का नाम रघुवंश पड़ा। रघु के पुत्र प्रवृद्ध, प्रवृद्ध के पुत्र शङ्खण, शङ्खण के पुत्र सुदर्शन, सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण, अग्निवर्ण के पुत्र शीघ्रण, शीघ्रण के पुत्र मरू, मरू के प्रशुश्रुक और प्रशुश्रुक से अम्बरीष एवं अम्बरीष से नहुष का जन्म हुआ। नहुष के ययाति, ययाति के नाभाग, नाभाग के अज और अज से राजा दशरथ का जन्म हुआ। दशरथ के चार पुत्र राम-लक्ष्मण-भरत और शत्रुघ्न हुये।

त्रेतायुग के अंत में सूर्यवंशी सम्राट अज के पुत्र महाराज दशरथ कोशल देश की राजधानी अयोध्यापुरी में राज्य करते थे। उस समय की अयोध्या 60 मील लम्बी और 15 मील चौड़ी थी। नगर के चारों ओर जल से पूर्ण एक खाई थी। नगर के चारों ओर दुर्गम दुर्ग बने हुए थे जिन पर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और बड़ी-बड़ी तोपें रखी रहती थीं। नगर का आन्तरिक भाग लम्बे-लम्बे और चौड़े राजपथों से विभक्त होता था। इन राजमार्गों पर प्रतिदिन छिड़काव होता था और पुष्प बिछाये जाते थे। राजपथ के दोनों ओर ऊँची-ऊँची अट्टालिकायें थीं। नगर में अनेक स्थानों पर आम्रादि के वृक्षों से युक्त सुन्दर बाग़

(बाग) थे। शीतल निर्मल जल से परिपूर्ण सरोवर भी यथास्थान विद्यमान थे। नगर, नर-नारियों के समूह से भरा हुआ था। ब्राह्मण वेदों के विद्वान् थे। क्षत्रिय शूरवीर और युद्धकला में निपुण थे। वैश्य व्यापार-बल से समृद्धिशाली थे। शूद्र श्रद्धापूर्वक द्विजों की सेवा करते थे। समूची राजधानी में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो भूख-प्यास से पीड़ित हो। नागरिक स्वर्ण के आभूषण धारण करते थे। नाना प्रकार के रथ, हाथी, घोड़े आदि पशु भी रखते थे। शिक्षा और रक्षा का ऐसा उत्तम प्रबन्ध था जैसे बाल्मीकि रामायण में लिखा है–

**कामी वा न कदर्यो वा नृशंसः पुरुषः क्वचित्।**
**द्रष्टुं श्क्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः।।** –बालकाण्ड 6-8

कोई भी कामी, क्रूर, अविद्वान्, नास्तिक और अग्निहोत्र न करने वाला नहीं था। सब नर-नारी धर्मशील थे तथा प्रजा हर प्रकार से सुखी थी।

ऐसे प्रभावशाली, प्रजावत्सल, धर्म के जानने वाले महाराज दशरथ सन्तान न होने के कारण अत्यन्त दुःखी थे। जब महारानी कौशल्या से कोई सन्तान उत्पन्न नहीं हुई तो महाराज दशरथ ने राजकुमारी सुमित्रा और कैकेयी से विवाह किया; परन्तु उनकी मनोकामना अब भी पूर्ण नहीं हुई। अतः महाराज चिन्तित और उदास रहने लगे। एक दिन महाराज दशरथ को विचार आया कि पुत्र-प्राप्ति के लिए मैं पुत्रेष्टि-यज्ञ क्यों न करूँ? जब उन्होंने अपना विचार मंत्रियों के समक्ष रखा तो सबने ही इस विचार का अनुमोदन किया। सरयू नदी के तट पर यज्ञ की तैयारियाँ होने लगीं। यज्ञ के सम्पादनार्थ ऋषि शृंगी को बुलवाया गया। महर्षि के पधारने पर महाराज दशरथ ने निवेदन किया –

**भगवन्! आप ऐसा प्रयत्न कीजिए जिससे हमारे कुल की वृद्धि हो।**

ऋषि ''बहुत अच्छा'' कहकर राजा से बोले–

**राजन्! आपके कुल को बढ़ाने वाले चार पुत्र उत्पन्न होंगे। पुत्र-प्राप्ति कराने के लिए मैं अथर्ववेद के मंत्रों द्वारा विधिवत् पुत्रेष्टि-यज्ञ कराऊँगा।**

इसके उपरांत तेजस्वी ऋषि ने पुत्रोत्पत्ति के लिए पुत्रेष्टि-यज्ञ का आरम्भ कराया और मंत्र-विहित कर्म से अग्नि में आहूति देना आरम्भ किया।

यज्ञ की समाप्ति पर महर्षि शृंगी ने अपने हाथों से महाराज दशरथ को पुत्रोत्पादन रूप, अद्‌भुत गुणयुक्त खीर का एक पात्र दिया और कहा—

**राजन्! यज्ञ करते हुए उसके प्रसाद-रूप में आपको यह दिव्य पायस प्राप्त हुई है। नृपश्रेष्ठ! यह खीर विद्वान् पुरुषों ने यज्ञाग्नि में निर्मित की है। यह पुत्रोत्पादक, प्रशस्त और आरोग्यवर्धक है। इसे ग्रहण कीजिये और अपनी पत्नियों को खिलाइये। आपको निःसन्देह पुत्रों की प्राप्ति होगी।**

''बहुत अच्छा'' कहकर महाराज दशरथ ने उस दिव्य खीर से भरी हुई स्वर्णपात्री को ग्रहण किया और ऋषि शृंगी का अभिनन्दन करके महलों की ओर चले। राजमहल में प्रवेश करके उन्होंने कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी तीनों रानियों को खीर दी। उस खीर को खाकर रानियों ने शीघ्र ही अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी गर्भों को धारण किया।

## 2. जन्म और शिक्षा

यज्ञ-समाप्ति के एक वर्ष पश्चात् चैत्र मास में नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र में महारानी कौशल्या के गर्भ से एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ। आनन्दोत्सव होने लगे। महाराज ने बड़े-बड़े दान दिये और ऋषि-मुनियों ने आशीर्वाद दिये। पुनः रानी कैकेयी के गर्भ से एक पुत्र और रानी सुमित्रा के गर्भ से दो पुत्र हुए। इनके जन्मोत्सव भी बड़ी धूमधाम से मनाये गये।

वैदिक मर्यादा के अनुसार 11 दिन व्यतीत होने पर महाराजा दशरथ ने अपने पुत्रों के नामकरण-संस्कार कराये। महर्षि वशिष्ठ ने

बड़े पुत्र का नाम 'राम', कैकेयी के सुत का नाम 'भरत' और सुमित्रा के पुत्रों का नाम 'लक्ष्मण' और 'शत्रुघ्न' रखा। महाराज दशरथ ने ब्राह्मणों, नगर और देशवासी जनों को भोजन कराया तथा ब्राह्मणों को बहुत से बहुमूल्य रत्न प्रदान किये।

जब चारों भाई बड़े हुए तो उनके विधिवत् यज्ञोपवीत-संस्कार और वेदारम्भ-संस्कार हुए और चारों राजकुमार विधिवत् अध्ययन करने लगे। चारों ही राजकुमार बड़े बुद्धिमान् थे। अतः जो कुछ पढ़ते थे उसे शीघ्र धारण कर लेते थे। वेदों तथा वेदांगों का अध्ययन कर वे वेदों के ज्ञाता तथा धनुर्वेद का अनुशीलन कर धनुर्विद्या में प्रवीण हो गये। वे शूरवीर, प्रजाहित-साधन में तत्पर, ज्ञानी, गुणों से प्रकाशित, लज्जाशील, सब व्यवहारों के ज्ञाता और दूरदर्शी बन गये।

श्रीराम की बाल-लीलाओं के संबंध में महर्षि वाल्मीकि ने कोई वर्णन नहीं किया है। हाँ, चारों भाइयों के परस्पर प्रेम का वर्णन अवश्य मिलता है। प्रारम्भ से ही लक्ष्मण को श्रीरामचन्द्र जी से अत्यधिक प्रीति थी। लक्ष्मण अपने शरीर का कुछ भी ध्यान न कर श्रीराम का प्रिय करने में लगे रहते थे। वे सदा उनके साथ रहते थे। यहाँ तक कि जब श्रीराम घोड़े पर सवार हो शिकार खेलने के लिए जाते थे तब लक्ष्मण भी धनुष लेकर उनके पीछे-पीछे हो लिया करते थे। उधर श्रीराम को भी लक्ष्मण के बिना निद्रा नहीं आती थी और लक्ष्मण को खिलाये बिना स्वयं कोई मिठाई भी नहीं खाते थे। इसी प्रकार लक्ष्मण का छोटा भाई शत्रुघ्न भरत को और भरत शत्रुघ्न को प्राणों से प्रिय था।

## 3. विश्वामित्र का आगमन और ताड़कावध

एक दिन महाराज दशरथ मन्त्रियों के मध्य बैठे राजकार्य-सम्बन्धी चर्चा कर रहे थे कि द्वारपाल ने महर्षि विश्वामित्र के आगमन की सूचना दी। सूचना पाकर वशिष्ठजी सहित प्रसन्नचित्त होकर महाराज उनकी अगवानी के लिए चले। तेज से देदीप्यमान मुनि को देखकर राजा ने उन्हें अर्घ्य प्रदान किया। विश्वामित्र ने शास्त्रोक्त

विधि से राजा के अर्घ्य को ग्रहण कर उनसे कुशल-मंगल पूछा। विश्वामित्र ने राजा के नगर, कोष, राज्य, कुटुम्बी जन तथा परिजनों का कुशल-समाचार पूछा, फिर वशिष्ठ आदि ऋषियों का कुशल समाचार पूछकर सभा में प्रविष्ट हुए और सब यथायोग्य आसनों पर बैठे। तब दशरथ ने कहा–

**हे महामुने! आपके दर्शनों से आनन्दित हुआ मैं आपका कौन-सा प्रियकार्य करूँ? क्योंकि आपकी कृपादृष्टि से आज मेरा जन्म सफल हुआ और जीवन सुजीवन हो गया।**

राजा के इन वचनों को सुनकर विश्वामित्रजी ने बिना किसी भूमिका के अपना अभिप्राय प्रकट कर दिया। उन्होंने कहा–

**राजन्! कुछ समय से हमारे यज्ञों में विघ्न होने लगे हैं। जब हम यज्ञ करने लगते हैं तो मारीच और सबाहु नाम के राक्षस जो बड़े बलवान और शस्त्रास्त्र-विद्या में निपुण हैं, हमारे यज्ञ का विध्वंस कर देते हैं। इसलिए महाराज! आप अपने सत्यपराक्रमी ज्येष्ठ पुत्र राम को मुझे दे दें। मैं इसकी रक्षा करूँगा। यह अपने दिव्य तेज के प्रभाव से उन विघ्नकारी राक्षसों को समाप्त करने में समर्थ हैं। राम के अतिरिक्त कोई दूसरा मनुष्य उन राक्षसों को मारने का साहस नहीं कर सकता।**

महर्षि विश्वामित्र के इन वचनों को सुनकर दशरथ थोड़ी देर के लिए मूर्च्छित हो गये। जब उन्हें होश आया तो वे कहने लगे–

**महर्षे! मेरा राम तो अभी 16 वर्ष का भी नहीं है, वह राक्षसों से युद्ध कैसे कर सकेगा? यदि आप राक्षसों से युद्ध ही लड़ना चाहते हैं तो मैं स्वयं हाथों मे धनुष लेकर आपके यज्ञ की रक्षा करूँगा और जब तक शरीर में प्राण रहेंगे तब तक निशाचरों से लड़ता रहूँगा। मैं अपनी सेना के साथ वहाँ चलता हूँ। आप राम को न ले जाइये।**

दशरथ के इन वचनों को सुनकर विश्वामित्र को क्रोध आ गया और वे बोले, हे राजन्! आप रघुवंश में उत्पन्न होकर अपने वचन से फिरते हैं, यह आपकी वंशपरम्परा के विपरीत बात है। यदि आपकी ऐसी इच्छा है तो लो मैं चला–

**हे मिथ्याप्रतिज्ञ ! आप अपने बन्धु-बान्धवों के साथ प्रसन्न रहिये ।**

ऐसी गम्भीर स्थिति देखकर वसिष्ठजी बोले–

**महाराज ! इक्ष्वाकु-कुलोत्पन्न आप तो धर्म की साक्षात् मूर्ति ही हैं । आप तीनों लोकों में धर्मात्मा प्रसिद्ध हैं, अतः अपने धर्म का त्याग मत कीजिये । श्रीराम अस्त्र-विद्या में कुशल हों या न हों राक्षस उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकते । जैसे अग्नि-चक्र से रहित अमृत को कोई पा नहीं सकता, इसी प्रकार अनेक अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता विश्वामित्र जी रक्षित राम का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सकता । ये विश्वामित्र तो स्वयं ही उन राक्षसों को मार सकते हैं परन्तु आपके पुत्र की भलाई के लिये ही ये उसे आपसे माँग रहे हैं ।**

वशिष्ठजी के इस प्रकार समझाने-बुझाने पर दशरथ श्रीराम को विश्वामित्रजी के साथ भेजने के लिए सहमत हो गये । उन्होंने राम और लक्ष्मण को बुलाया और स्वस्तिवाचन आदि करके उन्हें विश्वामित्रजी को सौंप दिया । उनके प्रस्थान करने पर शंखध्वनि की गई और नगाड़े बजाये गये । जब ये लोग अयोध्या से 6 कोस दूर सरयू के दक्षिण-तट पर पहुँचे तब विश्वामित्रजी श्रीराम से बोले–

**जल्दी से शरीर शुद्ध कर लो अथवा आचमन कर लो, फिर मैं तुम्हें बला और अतिबला नामक विद्याएँ दूँगा जिनके प्रभाव से तुम्हें न कभी थकावट होगी और न भूख-प्यास की बाधायें तुम्हें सतायेंगी तथा राक्षस लोग भी तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेंगे ।**

मुनि के आदेश से श्रीराम ने आचमन कर और प्रसन्नचित्त होकर उन विद्याओं को ग्रहण कर लिया । उसके पश्चात् गुरु की सेवा करते हुए दोनों भाइयों ने वह रात्रि सरयू के तीर पर ही व्यतीत की । प्रातः विश्वामित्र राजकुमारों से बोले, हे कौशल्यानन्दन राम ! प्रातः होने को है । अब उठो और प्रातः कृत्य कर डालो । महर्षि के वचनों को सुन दोनों कुमार उठ बैठे तथा स्नान आदि से निवृत्त हो उन्होंने गायत्री मंत्र का जप किया ।

अपने दैनिक कृत्यों से निवृत्त होकर ये तीनों आगे चले । गंगा

और सरयू के संगम को देखते हुए ये 'काम-आश्रम' में पहुँचे और वहाँ रात्रि व्यतीत की। दूसरे दिन नाव द्वारा नदी पार कर दूसरे किनारे पर पहुँचकर आगे चले। कुछ दूर चलने पर उन्होंने एक भयानक निर्जन वन देखा। विश्वामित्र से पूछने पर उन्होंने बताया कि यहाँ ताड़का नाम की एक राक्षसी रहती है। उसी ने इस वन को उजाड़ा है। अब तुम उस कामचारिणी स्त्री को मारकर इस वन को निष्कण्टक बना दो। हे राम! आप इस दुष्टा, परमदारुण और दुष्ट पराक्रमवाली ताड़का का वध करके गौ और ब्राह्मण का हितसाधन कीजिये।

ऐसी स्त्री के वध करने में तुम्हारे मन में शंका अथवा घृणा उत्पन्न नहीं होनी चाहिये। प्रजा का सब प्रकार से रक्षण करना ही राजाओं का धर्म है। पूर्वकाल में इन्द्र ने मन्थरा को और विष्णु ने भृगु की पत्नी को मार डाला था। अतः मेरी आज्ञा से तुम भी घृणा त्याग कर इसको मार डालो। महर्षि विश्वामित्र के इन उत्साहवर्धक वचनों को सुनकर श्रीराम हाथ जोड़ कर बोले—महर्षे! आपकी आज्ञानुसार मैं ताड़का का वध करके गौ, ब्राह्मण तथा देशवासियों का हित करने के लिए तत्पर हूँ।

ऐसा कह, श्रीराम ने धनुष की डोरी को टंकारकर घोर शब्द किया। इस घनघोर गर्जन को सुनकर ताड़का श्रीराम और लक्ष्मण की ओर दौड़ी। उसे देख श्रीराम लक्ष्मणजी से कहने लगे कि स्त्री की हत्या करना ठीक नहीं है। अतः मैं इसके हाथ पाँव तोड़कर और नाक कान काट कर इसे अभी भगाये देता हूँ। ताड़का भी श्रीराम के इन शब्दों को सुनकर उनकी ओर झपटी। पहले उसने इतनी धूल उड़ाई कि श्रीराम और लक्ष्मण को कुछ भी न दीख पड़ा। फिर छुपे-छुपे वह राम और लक्ष्मण पर पत्थरों की वृष्टि करती रही। यह देख श्रीराम भी अत्यंत क्रुद्ध हुए और उन्होंने बाणों द्वारा उसके दोनों हाथ काट डाले। लक्ष्मण ने उसके नाक और कान काट डाले। इतने पर भी वह कामरूपिणी पत्थरों की वृष्टि करती रही। यह देख विश्वामित्रजी बोले—

**हे राम! अब इस दुष्टा पर अधिक दया दिखाने की आवश्यकता नहीं है। अब इसे शीघ्र मार डालो।**

विश्वामित्र के आदेशानुसार श्रीराम ने शब्दबेधी बाणों से उसे चारों ओर से घेर कर उसकी छाती में एक ऐसा बाण मारा कि वह पृथिवी पर गिर पड़ी और मर गई। यह देख उस वन के समीप रहने वाले सभी ऋषि-मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए। विश्वामित्र ने भी श्रीराम का माथा सूँघा तथा उन्हें आशीर्वाद दिया। वह रात उन्होंने उसी वन में व्यतीत की। दूसरे दिन विश्वामित्र ने श्रीराम को हर प्रकार से योग्य और सुपात्र जानकर उन्हें विष्णु-चक्र, ब्रह्मास्त्र, शुष्क और आर्द्रय विद्युत अस्त्र, मोहनास्त्र, तामसास्त्र आदि बहत्तर अस्त्र-शस्त्र प्रसन्नतापूर्वक प्रदान कर दिये।

अस्त्र-शस्त्रों को प्राप्त कर ये सब आगे चल पड़े। चलते-चलते उन्हें एक मनोरम आश्रम दिखाई पड़ा। श्रीराम ने पूछा–

**यह आश्रम किसका है?**

विश्वामित्र ने कहा–

**यह वह स्थान है जहाँ महाराज विष्णु ने अनेक वर्षों तक तप किया था। यहाँ उनका तप सिद्ध हुआ था, अतः इस आश्रम का नाम सिद्धाश्रम है। मैं इसी आश्रम में रहता हूँ। इसी आश्रम में दुष्ट लोग उपद्रव मचाया करते हैं। यहीं उन दुराचारियों का वध करना होगा।**

## 4. मरीच, सुबाहु का पराभव व अहल्या का उद्धार

आश्रम में पहुँचकर और कुछ देर विश्राम कर राजकुमारों ने विश्वामित्र से कहा–

**हे मुनिवर! आप आज ही यज्ञ आरम्भ कीजिये, आपका मंगल होगा। यह सिद्धाश्रम है। अतः आपका कार्य सिद्ध होगा।**

यह सुन विश्वामित्र ने नियमपूर्वक जितेन्द्रिय हो यज्ञ करना आरम्भ कर दिया। दोनों राजकुमार पूर्ण सावधानी से यज्ञ की रक्षा में तत्पर हुए। 6 दिन और 6 रात्रि बिना शयन किये उस तपोवन की रक्षा करते रहे। पाँच दिन तो निर्विघ्न बीत गये। छठे दिन मारीच, सुबाहु

और उनके साथ अन्य राक्षसों ने विघ्न करना आरम्भ किया। तब श्रीराम ने मानवास्त्र को धनुष पर चढ़ा मारीच की छाती में मारा जिससे घायल होकर मारीच दूर जा पड़ा। फिर उन्होंने आग्नेयास्त्र से सुबाहु को सदा के लिए भूमि पर सुला दिया और बचे-खुचे राक्षसों को वायव्यास्त्र चलाकर नष्ट कर दिया। इस प्रकार यज्ञ के निर्विघ्न समाप्त होने पर महर्षि विश्वामित्र श्रीराम से बोले–

**हे महाबाहु! मैं आज कृतार्थ हुआ। तुमने गुरु आज्ञा का खूब पालन किया और आश्रम का नाम सिद्धाश्रम चरितार्थ कर दिया।**

वह रात्रि उसी आश्रम में व्यतीत कर दूसरे दिन दोनों भाई विश्वामित्रजी के चरणों में उपस्थित हुए और बोले, आपके दोनों सेवक उपस्थित हैं। आज्ञा दीजिये अब हम आपकी क्या सेवा करें। विश्वामित्र बोले–

**परमधार्मिक मिथिलाधीश महाराज जनक के यहाँ एक यज्ञ होने वाला है। हम लोग वहाँ जा रहे हैं। तुम भी हमारे साथ चलो। वहाँ तुम एक अद्‌भुत और श्रेष्ठ धनुष भी देखोगे।**

यह कहकर विश्वामित्रजी ने वहाँ से प्रस्थान किया। उसके साथ अनेक ऋषि और दोनो कुमार भी चले। मार्ग में जहाँ भी रात होती थी विश्वामित्रजी दोनों कुमारों को उनके पूर्वजों की गौरवगाथा सुनाकर उन्हें भी महान् बनने और श्रेष्ठकर्म करने की प्रेरणा देते थे। इस प्रकार पदयात्रा करते हुए जब इन लोगों को मिथिलापुरी दिखाई दी तो सब लोग वाह-वाह कर उठे।

श्रीराम ने मिथिलापुरी के उपवन मे एक पुराना निर्जन किन्तु रमणीक आश्रम देखकर पूछा, हे मुने! यह आश्रम बहुत ही शोभायमान है परन्तु इसमें कोई ऋषि दिखाई नहीं देता, यह क्या बात है? तब महर्षि विश्वामित्र ने उस आश्रम का वृत्तान्त सुनाते हुए कहा–हे राम! यह आश्रम गौतम ऋषि का है। इस आश्रम में वे अहल्या के साथ बहुत वर्षों तक तप करते रहे। एक दिन गौतम ऋषि कहीं दूर चले गये। उनकी अनुपस्थिति में इन्द्र ने गौतम का रूप धारण

कर अहल्या के साथ सहवास किया। जब इन्द्र वहाँ से जाने लगा तो गौतम भी वहाँ आ पहुँचे। इन्द्र का अपना-सा रूप धारण किये हुए देखकर गौतम सारी परिस्थिति को ताड़ गये और उन्होंने इन्द्र से कहा—

**अरे दुष्ट! मेरा रूप धारण कर तूने न करने योग्य कर्म किया है। अतः तू नपुंसक हो जायेगा।**

फिर वे अहल्या से बोले—

**तू कठोर तप करती हुई और भूमि के ऊपर शयन करती हुई बहुत वर्षों तक यहाँ निवास कर।**

यह कहकर गौतम हिमालय के शिखर पर तप करने चले गये। अब तुम इस आश्रम में चलो और देवरूपिणी महाभाग अहल्या का उद्धार करो। तब राम और लक्ष्मण ने महर्षि विश्वामित्र के साथ उस आश्रम में प्रवेश किया। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि अहल्या तप के प्रभाव से देदीप्यमान हो रही थी। कोई भी व्यक्ति उससे दृष्टि नहीं मिला सकता था। श्रीराम और लक्ष्मण ने प्रसन्न होकर अहल्या के चरण छुए। अहल्या ने भी दोनों भाइयों का आदर-सत्कार किया। उसी समय गौतम भी आश्रम में आ पहुँचे और अहल्या को पाकर परम प्रसन्न हुए। तदनन्तर श्रीराम मिथिलापुरी की ओर चले।

लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि इन्द्र के सहस्र भग हो गये थे और अहल्या पत्थर की शिला बन गई थी। श्रीराम के पैर के स्पर्श से अहल्या जीवित हो गई थी। परन्तु महर्षि वाल्मीकि के अनुसार यह बात ठीक नहीं। श्रीराम ने शिला को चरणों से स्पर्श नहीं किया था अपितु उन्होंने तो अहल्या के चरण स्पर्श किये थे। पूर्वोक्त वर्णन में तो इतनी ही बात है कि अहल्या में व्यभिचार-दोष हो गया था। उसका प्रायश्चित रूप तप करके अहल्या शुद्ध हो गई तो गौतम ने श्रीराम और विश्वामित्र के समक्ष उसे ग्रहण कर लिया। इससे यह शिक्षा मिलती है कि दुरचारिणी स्त्री को प्रायश्चित करने पर स्वीकार कर लेना चाहिए। आज पुरुष चाहे कितना भी व्यभिचारी हो उसे कोई नहीं पूछता, मानो

उसे व्यभिचार करने का परमिट मिला हुआ है; परन्तु स्त्री से तनिक-सा अपराध हो जाने पर उसे घर से निकाल दिया जाता है, यह अन्याय ही है ।

## 5. धनुष भंग और विवाह

श्रीराम और लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र मिथिलापुरी में पहुँचे । महाराज जनक ने बड़े प्रेम से इनका आतिथ्य-सत्कार कर विश्वामित्रजी से पूछा–

**हे मुने ! देवताओं के तुल्य पराक्रमी, गज, सिंह, शार्दूल तथा वृषभ के समान गतिवाले, सौंन्दर्य में अश्विनीकुमारों जैसे, यौवनावस्था को प्राप्त ये दोनों वीर क्यों और किसलिये पैदल चलकर यहाँ आये हैं और किसके पुत्र हैं ?**

विश्वामित्र ने कहा– ये दोनों महाराज दशरथ के पुत्र हैं । फिर विश्वामित्रजी दोनों कुमारों के अयोध्या से आने, राक्षसों का वध करने और अहल्या-उद्धार करने आदि का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर बोले कि आपके सुप्रसिद्ध धनुष को देखना चाहते हैं ।

महाराज जनक ने अपने मंत्रियों को उस धनुष को लाने की आज्ञा दी । बहुत से बलवान् पुरुष धनुष की पेटी को जिस में आठ पहिये लगे थे, लेकर आये । धनुष के आने पर महाराज जनक ने कहा, कि यह वही श्रेष्ठ धनुष है जिस पर बड़-बड़े पराक्रमी वीर भी चिल्ला न चढ़ा सके । महर्षे ! आप राजकुमारों को आज्ञा दें कि वे इस धनुष को देखें ।

महर्षि की आज्ञा पाकर श्रीराम ने धनुष की पेटी खोलकर उस धनुष को देखा और कहा कि ऋषे ! मैं इस धनुष को उठाना और चढ़ाना भी चाहता हूँ । राजा जनक और विश्वामित्रजी की स्वीकृति पर श्रीराम ने हज़ारों व्यक्तियों की उपस्थिति में उस धनुष को उठाकर ज्यों ही उसकी प्रत्यंचा चढ़ाने लगे कि धनुष टूट कर दो टुकड़े हो गया ।

लोग आश्चर्यचकित होकर ''धन्य-धन्य'' कह उठे। राजा जनक भी परम प्रसन्न होकर कहने लगे–

हे कौशिक! मैंने सीता के विवाह के लिए ''वीर्यशुल्क'' की जो प्रतिज्ञा की थी वह आज पूर्ण हो गई। अब मैं अपनी प्राणों से प्रिय पुत्री सीता को श्रीराम को दूँगा। विश्वामित्र की आज्ञा से उन्होंने महाराज दशरथ को यह शुभ संदेश भेजा। दूत शीघ्रगामी रथों में सवार हो चौथे दिन राजसभा में पहुँचे और महाराज दशरथ से निवेदन किया–महाराज जनक ने आपकी तथा आपके पुरवासियों की कुशल-क्षेम पूछी है और विश्वामित्रजी की अनुमति से संदेश भेजा है।

सीता के संबंध में लोक में ऐसा प्रसिद्ध है कि वह भूमि से उत्पन्न हुई थी परन्तु रामायण में उसके लिए 'ममात्मजा', 'ममसुता' और 'जनकसुता', 'जनकस्येव कुले जाता' बालकाण्ड 1.26 आदि वर्णन आये हैं। अयोध्याकांड 26.20 में 'महति कुले सम्भूते' – 'बड़े कुल में उत्पन्न' ऐसा श्रीराम ने कहा है। इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि सीता भूमि से उपन्न नहीं हुई। भूमि से उत्पत्तिवाली बात पीछे से मिलाई गई है। सीता की उत्पत्ति के संबंध में रामायण के प्रसिद्ध समालोचक श्री सी०वी० वैद्य ने बहुत सुन्दर लिखा है–

**Sita is said to be the daughter of Janak but no mention made of her being born of the earth.**

श्रीमान् को यह तो ज्ञात ही है कि मेरी पुत्री वीर्यशुल्का हैं उसके लिए अनेक राजा लोग हतोत्साह होकर विमुख हुए। मेरे सौभाग्य से विश्वामित्र के साथ आकर उस मेरी कन्या को आपके पुत्र ने विजय किया है। अतः मैं अपनी कन्या का विवाह आपके पुत्र के साथ करना चाहता हूँ। दूत के इन वचनों को सुनकर महाराज दशरथ बड़े प्रसन्न हुए और अपने मंत्रियों से बोले, यदि आप लोगों की स्वीकृति हो तो शीघ्र जनकपुर पहुँचने की तैयारी की जाए। मंत्रियों की स्वीकृति पर बड़े धूमधाम से चलने की तैयारी होने लगी। दूसरे दिन वसिष्ठ आदि ऋषियों के साथ प्रस्थान कर मार्ग में विश्राम लेते हुए पाँचवे दिन महाराज दशरथ मिथिलापुरी पहुँचे।

महाराज जनक ने प्रेमपूर्वक सब का स्वागत, और आतिथ्य किया। अगले दिन जनक, महाराज दशरथ और दोनों ओर के कुलपुरोहित एक स्थान पर एकत्रित हुए। वसिष्ठ ने महाराज दशरथ की वंशावली सुनाकर जनक से अपनी पुत्री सीता और उर्मिला को राम और लक्ष्मण को देने की प्रार्थना की। राजा जनक ने अपनी वंशपरम्परा अपने श्रीमुख से कह सुनाई। फिर विश्वामित्र बोले, ''राजन् ! आपके भाई कुशध्वज की दो कन्याएँ हैं। मैं उन्हें भरत और शत्रुघ्न के लिए मांगता हूँ।'' जनक ने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। विवाह की तिथियाँ निश्चित् की गई। इस अवसर पर महाराज दशरथ ने ब्राह्मणों को 1,00,000 गौएँ दान दीं। इन गोओं के सींग सोने के पत्रों से मढ़े हुए थे, वे दुधारू थीं तथा उनके साथ उनके बछड़े भी थे। प्रत्येक गौ के साथ दूध दोहने का कांसे का पात्र था।

निश्चित तिथि पर वैदिक मंत्रों के साथ अग्नि में आहुति देते हुए श्रीराम और सीता का विवाह हुआ। अपनी पुत्री सीता को श्रीराम को सौंपते हुए जनक ने कहा–हे राम! यह मेरी कन्या सीता आज से आपकी सहधर्मचारिणी हुई। इसे ग्रहण कीजिये और अपने हाथ से इसका हाथ पकड़िये।

फिर लक्ष्मण आदि के विवाह भी धूमधाम से सम्पन्न हुए। विवाह आदि कृत्य के समाप्त हो जाने पर दूसरे दिन महर्षि विश्वामित्र महाराज दशरथ और जनक से विदा लेकर हिमालय की ओर चले गये। महाराज दशरथ ने भी प्रस्थान की इच्छा प्रकट की। महाराज जनक ने धन-धान्य, बहुमूल्य वस्त्र, हाथी-घोड़े और रथ आदि भेंट देकर उन्हें विदा किया।

**परशुराम का पराभाव**

महाराज दशरथ अपनी चतुरांगिनी सेना को साथ लेकर अयोध्या की ओर चले। अभी ये कुछ ही दूर गये थे कि जटाजूटधारी, भयंकर रूप धारण किये हुए, अनेक राजाओं का मान-मर्दन करने वाले जमदग्नि के पुत्र परशुरामजी सामने आते हुए दिखाई दिये। सारे ऋषि

और मुनि भयभीत हो गये और सोचने लगे कि ये कहीं पुनः क्षत्रियों का संहार करने तो नहीं आये हैं। ऐसा विचार करते हुए उन्होंने परशुराम को पाद्य और अर्घ्य प्रदान किया। उसे ग्रहण कर वे श्रीराम से बोले–

**मैंने आपकी वीरता का वृत्तान्त सुना है। मैं अपने साथ एक और धनुष लाया हूँ। आप इस धनुष की डोरी चढ़ाकर अपना बल दिखलाइये। आपके बल को जानकर मैं आपसे द्वंद्व-युद्ध करूँगा।**

महाराज दशरथ यह देखकर अति दुःखी हुए और उन्होंने परशुराम से अपने पुत्रों के लिये अभय माँगा। परन्तु दशरथ के वचनों पर कोई ध्यान न दे वे राम से धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का आग्रह करने लगे। श्रीराम ने कहा–आपने जो पराक्रम किये हैं वे सब मैं सुन चुका हूँ। परन्तु आप जो यह समझकर कि हम वीर्यवान् नहीं हैं, हममें क्षात्र धर्म का अभाव है, हमारे तेज का अनादर करते हैं तो अब हमारा पराक्रम देखिये। यह कहकर श्रीराम ने क्रोध में भरकर परशुराम के हाथ से धनुष और बाण खींच लिये और उस पर चिल्ला चढ़ाकर बोले–हे परशुराम! एक तो ब्राह्मण होने के कारण आप मेरे पूज्य हैं। दूसरे आप विश्वामित्रजी के संबंधी हैं अतः इस बाण को आपके ऊपर छोड़कर आपके प्राण तो मैं लेना नहीं चाहता परन्तु इस बाण से आपके चलने-फिरने की शक्ति को समाप्त कर दूँगा अथवा आपने जो यश प्राप्त किया है उसे समाप्त कर दूँगा। जो आपको पसन्द हो वही बताइये।

श्रीराम के सम्मुख परशुराम जड़ और वीर्यहीन से हो गये और उन्होंने राम से कहा कि आप मेरे चलने-फिरने की शक्ति को नष्ट न कीजिये। मैंने क्षत्रियों का संहार करके जो यश प्राप्त किया है उसे ही समाप्त कीजिये। श्रीराम ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। परशुराम श्रीराम की प्रदक्षिणा कर महेन्द्र पर्वत पर चले गये।

गोस्वामी तुलसीदासजी ने धनुष टूटने के अवसर पर परशुराम का जनकपुरी में पहुँचना लिखा है। यह बाल्मीकि रामायण के विरुद्ध होने से अप्रामाणिक ही है। तुलसीदासजी ने लक्ष्मण और परशुराम का

जो कटाक्षपूर्ण वार्तालाप दिखलाया है वह आर्यमर्यादा के सर्वथा विरुद्ध है। अतः कपोलकल्पित है।

परशुराम के चले जाने पर श्रीराम और महाराज दशरथ ने सेनाओं को आगे बढ़ने का आदेश दिया। महाराज दशरथ शीघ्र ही सानन्द अयोध्या आ पहुँचे। पुरवासियों ने उनका धूमधाम से स्वागत किया। कुमारों सहित महाराज अपने महल में गये। उधर कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी ने भी अपनी पुत्र-वधुओं का स्वागत किया। सब वधुओं ने अपनी सासों तथा अन्य बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों को प्रणाम किया और फिर वे अपने-अपने पतियों के साथ एकान्त में आनन्दपूर्वक निवास करने लगीं।

कुछ लोग विवाह के समय सीताजी की अवस्था छह वर्ष और श्रीराम की अवस्था तेरह वर्ष बताते हैं, परन्तु यह बात रामायण के सर्वथा प्रतिकूल है। जब रावण संन्यासी के वेश में जनकनन्दिनी सीता के समक्ष आया और उसके वन में आने का कारण पूछा तो प्रसंगवश सीता ने कहा था—

मेरे पति महातेजस्वी श्रीराम की अवस्था 25 वर्ष और मेरी 18 वर्ष की थी। वन में अनसूया से वार्ता करते हुए सीताजी ने कहा था—मेरी विवाहोचित अवस्था देख पिताजी इस प्रकार चिन्ताग्रस्त हुए जैसे धन के नष्ट होने पर निर्धन मनुष्य होता है। यहाँ सीता अपने को पति-संयोग-सुलभ कहती है।

कैकेयी ने मुँह दिखाई में सीता को अपना स्वर्ण महल और कौशल्या ने चूड़ामणि प्रदान किये। परन्तु जब सीता ने पहली रात श्रीराम से पूछा कि आप मुझे मुँह दिखाई का क्या दोगे तो श्रीराम ने एक पत्नीव्रत की शपथ खाई।

कुछ समय पश्चात् भरत तथा शत्रुघ्न अपने मामा युधाजित के साथ केकय (कश्मीर) देश को चले गये। श्री रामचन्द्रजी पिताजी के परामर्शानुसार पुरवासियों के हितसाधक कार्य करने लगे। यह काण्ड सबसे बड़ा है।

# 6. राज्याभिषेक

यद्यपि चारों पुत्र महाराज को प्रिय थे परन्तु श्रीराम पर उनका विशेष अनुराग था, कारण वे अतिशय गुणवान थे। वे अत्यंत बलवान, सर्वगुणसम्पन्न, मधुरभाषी, परोपकारी, सदाचारी, सत्यवादी, दयालु और श्रेष्ठ वक्ता थे। इतना ही नहीं वे सांगोपांग वेद अध्ययन करके तथा यथाविधि व्रत करके स्नातक हुए थे, इसलिए वे तत्वतः सामवेद के ज्ञाता थे। बाण विद्या में वे अपने पिता से भी बढ़-चढ़कर थे। वे धर्म, अर्थ और काम के तत्व को जानने वाले, विलक्षण-स्मृति और प्रतिभावाले, लोकाचार और सामयिक धर्म में निपुण थे।

अपने पुत्र में ऐसे श्रेष्ठ गुणों को और अपने शरीर में बुढ़ापे के चिह्नों को देखकर महाराज दशरथ ने श्रीराम को युवराज बनाने का निश्चय किया। इस कार्य के सम्पादनार्थ उन्होंने राजसभा का अधिवेशन बुलाने की आज्ञा की। तद्नुसार अनेक नगरों और राष्ट्रों के रहने वाले प्रधान पुरुषों और राजाओं को बुलाया गया। जब सब लोग सभाभवन में यथास्थान आसीन हो गये, तब महाराज दशरथ ने गम्भीर ध्वनि में अपनी हर्षोत्पादक वक्तृता आरम्भ करते हुए कहा, कि जिस प्रकार हमारे पूर्व पुरुषों ने इस विशाल साम्राज्य का पालन किया है वह तो आपको विदित ही है। मैंने भी अपने पूर्वजों के पथ का अनुसरण करते हुए यथाशक्ति प्रजा का पालन किया है। परन्तु अब मैं बूढ़ा हो गया हूँ। इक्ष्वाकूवंशी राजाओं द्वारा पालित इस राज्य को मैं विशेष कल्याण के साथ जोड़ना चाहता हूँ। इस महती सभा में उपस्थित द्विजगण की सम्मति से मैं अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य सौंपकर विश्राम करना चाहता हूँ। यदि मेरा यह विचार उचित और योग्य हो तो आप इसमें सम्मति दें अथवा जो करना उचित हो वह बताएँ।

महाराज के इन वचनों को सुनकर सब लोग ऐसे प्रसन्न हुए जैसे घनघोर मेघ को देखकर मयूर नाच उठते हैं। सभी ने ''वाह-वाह, बहुत-ठीक'' कहकर ऐसी करतल ध्वनि की कि सभा-भवन भी हिल-सा गया। महाराज उनकी सहमति से अति प्रसन्न हुए और महर्षि

वसिष्ठ बोले इस पवित्र चैत्रमास में जिसमें वन पुष्पों से सुशोभित हो रहे हैं, आप राम के राज्याभिषेक की तैयारी कीजिये। महाराज के ये वचन सुन सभा ने एक बार फिर आनन्दघोष किया। इसके पश्चात् सभा की कार्रवाई समाप्त हो गई। लोग इधर-उधर जाने लगे।

इधर वशिष्ठजी राज्याभिषेक की तैयारी में लगे, उधर महाराज ने सुमंत्र को श्रीराम को बुलाने के लिए भेजा। जैसे ही श्रीराम रथ से उतर कर महाराज के पास आये उन्होंने महाराज के समीप आ, हाथ जोड़ और अपना नाम लेकर पिता के चरणों में प्रणाम किया। महाराज ने उनका हाथ पकड़ उन्हें गले लगाया और अपने समान ऊँचे स्वर्णमय आसन पर बिठाकर उन्हें राजनीति संबंधी सुन्दर उपदेश और उनके युवराज्याभिषेक की सूचना देकर विदा कर दिया। श्रीराम के हितैषी मित्रों ने यह शुभ संवाद महारानी कौशल्या को जा सुनाया। अगले दिन पुष्य नक्षत्र था, अतः प्रातःकाल ही राम के अभिषेक का निश्चय कर दशरथ अन्तःपुर में गये और सुमन्त को आज्ञा दी कि श्रीराम को पुनः हमारे पास लाओ। जब भी श्रीराम आये तो दशरथ ने कहा कि कुछ दिनों से मुझे भयंकर एवं अशुभ स्वप्न दिखाई पड़ते हैं जो भारी विपत्ति के सूचक हैं। अतः जब तक मेरी बुद्धि ठीक है तभी तक तुम्हारा राज्याभिषेक हो जाना चाहिये। भरत इस समय अपने मामा के यहाँ है, उसके लौटने से पूर्व ही तुम्हारा अभिषेक हो जाये, यही मेरी इच्छा है।

श्रीराम पिता के वचनों को सुन और उनसे आज्ञा पा माता कौशल्या के पास आये। सुमित्रा, लक्ष्मण और सीता भी वहीं विद्यमान थे। राम के राज्याभिषेक का समाचार सुन वे सब गद्‌गद् हो गये। श्रीराम दोनों माताओं को प्रणाम कर सीता-सहित अपने कक्ष में आए। थोड़ी ही देर में वसिष्ठ वहाँ आये और राज्याभिषेक यज्ञ के लिए श्रीराम और सीता को व्रत रखने का आदेश देकर चले गये। वसिष्ठजी के आदेशानुसार श्रीराम सीता सहित स्नान और अग्निहोत्र कर कुश आसन पर बैठकर परम पिता परमात्मा से अपने मंगल की प्रार्थना करने लगे। श्रीराम और सीता ने वह सारी रात प्रार्थना और उपासना

करते हुए ही व्यतीत की। श्रीराम के राज्याभिषेक की सूचना सारे नगर में फैल गई। नगरवासी इस आनन्द समाचार को सुनकर अयोध्या को सजाने लगे। स्थान-स्थान पर तोरण और वन्दनवार बाँधे गये, कदली-स्तम्भ गाड़े गये और राजमार्गों पर झंडे लहराये गये। सम्पूर्ण अयोध्या को दुल्हिन की भाँति सजाया गया। सर्वत्र श्रीराम के राज्याभिषेक की ही चर्चा सुनाई पड़ती थी।

## 7. रंग में भंग

रानी कैकेयी की दासी मंथरा उस दिन अचानक अपने महल के ऊपर चढ़ी तो आनन्दमग्न अयोध्यावासियों और अयोध्या की अनुपम सौन्दर्य छटा को देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने धात्री से इसका कारण पूछा तो उसने कहा कि कल श्रीराम का राज्याभिषेक होगा। इसी के उपलक्ष्य में यह सब हो रहा है। धात्री के वचन सुन क्रोध से जली भुनी मंथरा कैकेयी के शयनागार में जाकर और उसे उठाकर बोली–

**रे मूढ़! उठ, पड़ी क्या सोती है, तेरे ऊपर भारी संकट आ रहा है। कल राम का राज्याभिषेक होगा। अतः समय रहते अपने पुत्र को, स्वयं को और मुझे बचा।**

मंथरा के मुख से श्रीराम के राज्याभिषेक का समाचार पाकर कैकेयी आनन्दविभोर हो गई और एक बहुमूल्य हार कुब्जा को देकर कहने लगी–हे मंथरे! तूने यह अत्यंत आनन्दोदायक समाचार सुनाया है। इसके बदले में तुझे और क्या दूँ।

मैं राम और भरत में कोई विशेष अन्तर नहीं देखती। अतः यदि महाराज श्रीराम को राज्य देते हैं तो मुझे उनके इस कार्य से सन्तोष है। हे प्रिये! इस अमृतमय समाचार को सुनाने के लिए इस हार के अतिरिक्त और जो पुरस्कार चाहे माँग ले, मैं तूझे दूँगी। जब मंथरा ने उस दिव्य हार को फेंक दिया और कैकेयी को उलटा-सीधा समझाने लगी, तब कैकेयी राम के गुणों का वर्णन करके कहने लगी कि श्रीराम

धर्मज्ञ, गुणवान, जितेन्द्रिय, सत्यवादी और पवित्र हैं तथा ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण वे ही राज्य के अधिकारी हैं। राम अपने भाइयों और सेवकों का पुत्रवत् पालन करते हैं। तू ऐसे राम के अभिषेक की बात सुनकर दुःखी क्यों होती है?

मुझे जैसे भरत प्यारा है राम उससे भी अधिक दुलारा है। राम तो कौशल्या से भी अधिक मेरी ही सेवा करता है। कैकेयी की बातें सुनकर मंथरा बहुत दुःखी हुई और उसे पुनः समझाने लगी। अन्ततोगत्वा मंथरा का जादू चल गया। जब कैकेयी ने भरत को राज्य मिलने का उपाय पूछा तब मंथरा ने कहा–

**तू मैले वस्त्र पहनकर, बिना बिछौना बिछाये कोप-भवन में जाकर लेट जा। जब महाराज तुझे राज्याभिषेक का समाचार सुनाने आयें तो तू देवासुर-संग्राम की बात स्मरण कराके महाराज के पास धरोहर रूप में रखे हुए अपने दो वरों से भरत के लिए राज्य और राम के लिए चौदह वर्ष का बनवास माँग लेना।**

महाराज दशरथ मंत्रियों को श्रीराम के राज्याभिषेक की तैयारियाँ करने की आज्ञा दे रानियों को यह सुखद समाचार सुनाने सबसे पहले कैकेयी के अन्तःपुर में गये। अन्तःपुर में कैकेयी को न पाकर महाराज ने एक प्रतिहारी से पूछा तो पता लगा कि वह कोप-भवन में चली गई है। महाराज कोप-भवन में पहुँचे और उसे भूमि पर लेटे देखकर बोले कि तुम क्रुद्ध क्यों हो रही हो? क्या किसी ने तुम्हारा अपमान किया है अथवा कोई रोग सता रहा है? तुम्हें क्या चाहिए वही कहो। हम अपने पुण्य कर्मों की शपथ खाकर कहते हैं जो तू कहेगी हम वही करेंगे। राजा दशरथ ने कैकेयी से कहा–

**रघुकुल रीति सदा चली आई।**
**प्रान जाहिं बरु वचन ना जाई।।** –अयोध्याकांड 27.2

महाराज दशरथ के इस प्रकार मनाने पर कैकेयी ने कहा कि मैं आपसे एक कार्य कराना चाहती हूँ, परन्तु पहले आप प्रतिज्ञा करें तब मैं अपनी बात कहूँगी। महाराज दशरथ के शपथ खाने पर कैकेयी ने

कहा कि आपको देवासुर संग्राम की बात तो स्मरण ही होगी जहाँ आप शत्रु के प्रहारों से अचेत हो गये थे और उस समय मैंने आपकी प्राणरक्षा की थी। उस समय आपने मुझे दो वर मांगने के लिए कहा था। हे सत्यवादी राजन्! उन दोनों वरों को मैंने आपके पास धरोहर के रूप में रख छोड़ा था। उन दोनो वरों को इस समय मैं आपसे माँगती हूँ। मेरा पहला वर तो यह है कि राम के स्थान पर भरत का राज्याभिषेक हो और दूसरा यह कि 14 वर्ष तक वल्कल वस्त्र और मृगचर्म धारण करते हुए श्रीराम जंगल में रहें। यदि आप अपनी प्रतिज्ञा पालन करें और मुझे दोनों वर दें तो ठीक है अन्यथा मैं विष खाकर अपने प्राण त्याग दूँगी। कैकेयी के इन कठोर वचनों को सुन दशरथजी घोर चिन्ता और सन्ताप से संतप्त क्रुद्ध होकर कहने लगे कि श्रीराम ने अथवा हमने तेरा क्या बिगाड़ा है? श्रीराम तो तेरे साथ माता के समान ही बर्ताव करते हैं। सारे लोग राम के गुणों की प्रशंसा कर रहे हैं; फिर क्या अपराध लगाकर ऐसे श्रेष्ठ पुत्र का त्याग किया जाये? मैं राम के बिना जी नहीं सकता। अतः तू अपनी हठ छोड़ दे। मैं अपना सिर तेरे चरणों में रखता हूँ, तू प्रसन्न हो ओर अनुचित वर मत माँग। तू तो, हमें कहा करती थी कि मुझे भरत के समान ही राम भी प्रिय है, उसी राम को वन में भेजना तुझे कैसे अच्छा लगता है? जिस राम में सत्यभाषण, दानभावना, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरुओं की सेवा आदि सद्गुण निश्चय ही विद्यमान हैं– ऐसे राम को तू वन में क्यों भेजना चाहती है?

हे कैकेयी! हम तेरे हाथ जोड़ते हैं, तेरे पैरों पड़ते हैं, तू रामचन्द्र की वन से रक्षा कर और हमें प्रतिज्ञा-भंग के पाप से बचा। इस प्रकार महाराज ने कैकयी को बहुत समझाया परन्तु कैकेयी अपने दुराग्रह पर अड़ी रही। उसने कहा, कि महाराज! आप वचन देकर अब प्रतिज्ञा भंग करते हैं। यह धर्म नहीं है। यदि आप अपनी प्रतिज्ञा पूरी न कर राम का राज्याभिषेक करोगे तो मैं हलाहल विष का पान कर आपके सामने ही अपने प्राण त्याग दूँगी। महाराज दशरथ कैकेयी के इन

वचनों को सुनकर बड़े दुःखी हुए। वे बार-बार मूर्छित होने लगे। जब वे सचेत होते तो या तो कैकेयी को धिक्कारते थे या उसे मनाने का प्रयत्न करते थे। परन्तु कैकेयी पर इन बातों का तनिक भी प्रभाव नहीं हुआ। उन्होंने सैकड़ों बार राम को वन न भेजने की प्रार्थना की और कहा, राम को वन भेजने से मेरी सर्वत्र निन्दा होगी। हा! सज्जन पुरुष अब हमको अनार्य और पुत्र को बेचने वाला कहकर गली-गली में उसी प्रकार हमारी निन्दा करेंगे जैसी शराबी ब्राह्मण की करते हैं। जब कैकेयी अनुनय-विनय से न मानी तो दशरथजी ने क्रोध का आश्रय लेकर कहा।

अरी केकयराज कुलकलंकिनी! तू चाहे उदास हो अथवा कुपित हो, विष खाकर मर जा अथवा पत्थर से सिर फोड़ ले अथवा भूमि में समा जा, परन्तु तेरी इस कठोर बात को जिसमें मेरा सरासर अहित है, मैं कभी नहीं मानूंगा। यह कहकर दशरथ पुनः बेहोश हो गये। सारी रात इसी प्रकार बीत गई। महाराज दशरथ कभी क्रोध दिखाते थे और कभी अननुय-विनय करते थे परन्तु कैकेयी अपने निश्चय से टस-से-मस नहीं हुई। उसने सत्य की महत्ता पर बल देते हुए महाराज दशरथ को धर्मपालन की प्रेरणा की। महाराज भी सत्य के पाश में ऐसे बंध गये थे कि उससे छूट नहीं सकते थे। अतः महाराज ने धैर्य धारण कर और अपने मन को वश में कर कैकेयी से कहा कि आज से मैं तुझे और तेरे पुत्र भरत को त्यागता हूँ। यह सुन कैकेयी भी बड़े कठोर वचन बोली, कि आप राम को बुलाकर उसे वन भेजिये और मेरे पुत्र भरत को राज्य दीजिए।

इतने में सूर्योदय हो गया। हज़ारों नर-नारी, आबाल-वृद्ध, युवक और युवतियाँ आनन्द से भरे हुए राज्याभिषेक-दर्शन की लालसा में राजद्वार की ओर चले। महर्षि वसिष्ठ भी अपने शिष्यों सहित पुरी में आये और सुमन्त से कहा कि यज्ञारम्भ का समय हो गया है, अतः महाराज को हमारे आने की सूचना दो। सुमन्त राजभवन में पहुँचकर महाराज की स्तुति करने लगे। उन स्तुति-वाक्यों को सुनकर दशरथ

बहुत दुःखी हुए। उनकी यह दीन दशा देखा सुमन्त कुछ पीछे हटकर खड़े हो गये। जब महाराज कुछ न बोल सके तो कैकेयी ने कहा कि हे सुमन्त! रातभर अभिषेक के आनन्द में मग्न रहने के कारण ये सो नहीं सके। अब थककर सो रहे हैं। तुम शीघ्र जाकर श्रीराम को बुला लाओ। श्रीराम महाराज के अन्तःपुर में पहुँचे। परन्तु वहाँ क्या देखते हैं कि महाराज दशरथ दीन भाव से कैकेयी के साथ बैठे हैं। उनके मुख का रंग उड़ा हुआ है। श्रीराम ने पहले दशरथ के चरणों में शीश नवाया, तब माता कैकेयी को प्रणाम किया। श्रीराम को देखकर महाराज केवल 'राम' ही कह सके। शोक के कारण वे कुछ और न बोल सके। पिता की यह दशा देखकर श्रीराम बहुत दुःखी हुए और उन्होंने माता कैकेयी से कहा कि क्या पिताजी नाराज हैं? क्या मुझसे कोई अपराध हो गया है? कैकेयी ने कहा कि महाराज न तो अप्रसन्न ही हैं और न उन्हें कोई शोक है। इनके मन में तुम्हारे विषय में एक बात है जिसे ये डर के कारण नहीं कहते। यदि तुम बात स्वीकार करो कि महाराज जो कुछ उचित-अनुचित कहेंगे तुम उसे करोगे तो मैं तुम्हें सब हाल बता दूँ। माता के वचनों को सुनकर श्रीराम ने कहा–

मैं तो महाराज की आज्ञा से अग्नि में कूदने को प्रस्तुत हूँ, हलाहल विष पीने को तैयार हूँ और सागर में छलाँग लगाने के लिए भी तैयार हूँ। अतः महाराज की जो इच्छा हो वह मुझे बताओ। श्रीराम की इन प्रतिज्ञाओं को सुनकर कैकेयी ने कहा कि पूर्वकाल में देवासुर-संग्राम में मैंने तुम्हारे पिता की प्राणरक्षा की थी, तब इन्होंने प्रसन्न होकर मुझे दो वर देने की प्रतिज्ञा की थी। तदनुसार मैंने एक से भरत के लिए राज्य माँगा है और दूसरे से तुम्हारे लिये चौदह वर्ष का बनवास माँगा है। यदि तुम अपने-आपको सत्यप्रतिज्ञ बनाए रखना चाहते हो तो अभिषेक को छोड़कर जटा और मृगचर्म धारण कर 14 वर्ष दण्डकारण्य में वास करो।

इन कष्टदायक वचनों को सुनकर श्रीराम तनिक भी दुःखी न हुए अपितु उन्होंने कहा कि बहुत अच्छा। मैं महाराज की

आज्ञा-पालनार्थ ऐसा ही करूँगा, परन्तु पिताजी मुझसे बोलते क्यों नहीं ।

मैं आपके आदेश से ही भाई भरत के लिए राज्य ही नहीं, सीता, अपने प्राण, इष्ट, धन, सब कुछ सहर्ष दे सकता हूँ, फिर महाराज की आज्ञा से मैं क्या नहीं कर सकता ! श्रीराम के इन वचनों को सुनकर कैकेयी बड़ी प्रसन्न हुई और बोली, राम ! तुम शीघ्र बन जाने की तैयारी करो क्योंकि जब तक तुम वन नहीं जाते तब तक महाराज न स्नान करेंगे और न भोजन करेंगे । कैकेयी के इन वचनों को सुनकर महाराज ने कहा कि 'धिक्' और मूर्छित होकर गिर पड़े । उधर कैकेयी राम के वन जाने के लिए जल्दी करने लगी । राम ने कहा कि अब मेरे वन जाने में इतना ही विलम्ब है कि मैं माता कौशल्या से अनुमति ले आऊँ और सीता को समझा आऊँ । यह कह वे मूर्छित पिता और कैकेयी के चरणों में प्रणाम कर वहां से चल दिये । इस अप्रिय घटना से श्रीराम के मुखमंडल पर कोई विकार नहीं आया । पृथ्वी के राज्य को छोड़कर वन जाते हुए श्रीराम योगीश्वर की भाँति थे । उनके मन में किसी प्रकार का विकार दिखाई नहीं देता था ।

## 8. कौशल्या को सांत्वना और सीता व लक्ष्मण भी साथ

श्रीराम राजद्वार से सीधे माता कौशल्या के पास आये । उस समय कौशल्या रेशमी साड़ी धारण किये हर्षित हो मंगलाचारपूर्वक मंत्रों का उच्चारण करते हुए हवन कर रही थी । श्रीराम को देख यज्ञ को समाप्त कर कौशल्या श्रीराम के समक्ष आई । श्रीराम माता को देख उनके गले लग गए । माता ने भी पुत्र को भुजाओं में भर कर उसका आलिंगन किया और उसका सिर सूँघा । जब माता ने उसे बैठने के लिए आसन और खाने के लिए मिष्ठान्न दिया तो श्रीराम ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहा–

**माता ! पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है, मैं दण्डकारण्य में जा रहा हूँ । आपसे आज्ञा माँगने आया हूँ ।**

इन वचनों को सुनकर कौशल्या मूर्छित होकर गिर पड़ी। श्रीराम ने उन्हें धैर्य बँधाने का प्रयत्न किया परन्तु उनका शोक दूर न होता था। वह नहीं चाहती थीं कि उनका पुत्र उनकी आँखों से दूर हो। साथ ही उन्हें यह भी भय था कि राम के वन जाने पर उन्हें कैकेयी के ताने सुनने पड़ेंगे। श्रीराम से वियुक्त होने की अपेक्षा वे बन्ध्या रहना अधिक अच्छा समझती थीं। माता कौशल्या की ऐसी दीनहीन अवस्था देखकर लक्ष्मणजी कहने लगे–

**माता! मुझे यह बात अच्छी नहीं लगती कि स्त्री के वशवर्ती महाराज के कहने पर श्रीराम वन चले जायें। बुढ़ापे के कारण महाराज की बुद्धि बिगड़ गई है। अतः उनकी आज्ञा मानने योग्य नहीं है। श्रीराम जो शत्रुओं को भी प्रिय हैं, इस प्रकार वन में क्यों जाएं। बाल-बुद्धि रखने वाले राजा के वचनों पर कोई ध्यान नहीं देना चाहिए।**

फिर वे श्रीराम को सम्बोधन कर कहने लगे–

**आपकी आज्ञा से मैं महाराज को, अयोध्यावासियों को और भरत, सभी को मार डालूँगा। मैं उन सभी राजाओं को जो आपके राज्याभिषेक में विघ्न डालेंगे समाप्त कर दूँगा। मेरी ये भुजायें शरीर की शोभा के लिए नहीं हैं और न मेरा धनुष ही शृंगार का आभूषण है। मेरी ये वस्तुएँ तो शत्रुओं का मान-मर्दन करने के लिए हैं। यदि पिताजी धर्म और अधर्म का विवेक करने में असमर्थ हैं तो उनका भी वध कर देना चाहिए।**

फिर वे कौशल्या से कहने लगे कि हे माता! मुझे श्रीराम से इतना प्रेम हैं कि वे जलती हुई अग्नि में अथवा वन में जहाँ भी प्रवेश करेंगे, वहाँ तू मुझे पहले से ही विद्यमान देखेगी। लक्ष्मण की इन वीरतापूर्ण बातों को सुनकर कौशल्या श्रीराम को वन जाने से रोकने लगी। उन्होंने कहा, हे धर्मज्ञ! यदि तू धर्माचरण ही करना चाहता है तो यहाँ रहकर मेरी सेवा करके धर्माचरण कर, क्योंकि माता की सेवा से बढ़कर और कौन-सा उत्तम धर्म है। जैसे आपके लिये महाराज पूज्य हैं वैसे ही मैं भी तेरी पूज्या हूँ। मैं तुझे वन में जाने की अनुमति नहीं

देती । माता के आदेश को सुनकर श्रीराम ने कहा–

माता ! मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि मैं पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन कर सकूँ । अतः मैं आपको प्रणाम कर, आपको प्रसन्न कर तथा आपकी अनुमति ले वन जाना चाहता हूँ । फिर उन्होंने लक्ष्मणजी से कहा–लक्ष्मण ! मैं अपने प्रति तुम्हारे अनुराग को जानता हूँ । मुझे तुम्हारे बल और पराक्रम का भी ज्ञान है । परन्तु तुमने जो कुछ कहा है वह धर्मानुकूल नहीं है कि संसार में धर्म ही सर्वश्रेष्ठ है । धर्म में ही सत्य प्रतिष्ठित है । धर्मानुकूल होने के कारण पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता । हे भाई ! तू भी इस क्षात्रधर्म का अनुगमन करने वाली बुद्धि को त्याग और धर्म का आश्रय ग्रहण कर । पुनः वे माता से कहने लगे, माता ! महाराज को कैकेयी ने धोखा देकर अत्यन्त क्लेशित कर दिया है । मैं भी इस समय महाराज को छोड़कर वन में जा रहा हूँ । यदि तुम भी मेरे साथ वन में चल दीं तो महाराज नहीं बचेंगे और जो आप कहती हैं कि मेरा आदेश है कि तू वन को मत जा तो हे माते ! मुझे और आपको पिताजी की आज्ञा अवश्य माननी चाहिये क्योंकि महाराज एक तो आपके पति है, दूसरे मेरे गुरु हैं, तीसरे पिता हैं और चौथे सबका पालन-पोषण करने वाले स्वामी हैं ।

अंत में पातिव्रत्य का महत्व बताते हुए श्रीराम ने कहा कि जब तक स्त्री जीये उसे पति को ही अपना देवता समझना चाहिये । अतः इस समय आपके और मेरे स्वामी महाराज ही हैं । जो स्त्री व्रतोपवास तो करती है परन्तु पति की सेवा नहीं करती वह पापियों की गति को प्राप्त होती है । भले ही स्त्री किसी देवी-देवता की पूजा न करे, अपने पति की सेवा-शुश्रूषा में लगी रहने वाली स्त्री को स्वर्ग-सुखविशेष की प्राप्ति होती है । स्त्रियों को सदा पति की ही सेवा करनी चाहिये, उसी के भले में तत्पर रहना चाहिये । यही उसके लिए प्राचीन लोकाचारसिद्ध वेद और स्मृत्यनुकूल धर्म है ।

श्रीराम के इस प्रकार समझाने पर माता शोक त्याग और आचमन कर कहने लगी कि सन्मार्ग पर चलने से मैं तुम्हें रोक नहीं सकती । अब तुम जाओ और सज्जनों के मार्ग का अनुसरण करो ।

जिस धर्म को तुम धैर्य और नियमित रूप से पाल रहे हो वही धर्म तुम्हारी रक्षा करे। परमात्मा तुम्हारी रक्षा करे। विश्वामित्रजी द्वारा प्रदत्त दिव्य शस्त्रास्त्र तुम्हारी रक्षा करें। हे पुत्र! अब तुम्हारी जहाँ इच्छा हो वहाँ चले जाओ, परन्तु ऐसा करना जिससे ठीक समय पर मैं तुम्हारा मुख देख सकूँ।

माता से स्वस्तिवाचन करा, उनके आशीर्वचन ग्रहण कर तथा उन्हें प्रणाम कर श्रीराम सीताजी के भवन की ओर चले। सीता ने राम के वन-गमन के संबंध में अभी कुछ नहीं सुना था। वे तो राज्याभिषेक की ही बात सोच रही थी। सन्ध्यावन्दन से निवृत्त हो वे श्रीराम के आने की प्रतीक्षा कर रही थीं। इतने में ही राम कुछ शोकाकुल से अपने भवन में पहुँचे। पति के उतरे हुए चेहरे को देखकर सीता पूछने लगी कि यह परिवर्तन क्यों? आपके ऊपर सफेद छत्र क्यों नहीं है? चंवर क्यों नहीं डुलाया जा रहा है? वन्दीजन स्तुति पाठ क्यों नही कर रहे हैं? आपके पीछे दरबारी लोग क्यों नहीं हैं? क्या बात है कि आपके उत्सव पर रथ-हाथी भी दिखाई नहीं दे रहे हैं? सीता के इस प्रकार पूछने पर श्रीराम ने उन्हें अपने वन जाने का सारा वृत्तान्त कह सुनाया और कहा कि अब मैं 14 वर्ष के लिए दण्डक वन में जा रहा हूँ और तुमसे आज्ञा माँगने आया हूँ।

फिर सीता को उपदेश देते हुए बोले, 'धर्मज्ञे जानकी! तुम भरत के साथ उत्तम व्यवहार करना। महाराज दशरथ और माता कौशल्या की नित्य सेवा करना। मेरी अन्य माताओं की भी नित्य वन्दना किया करना और भाई भरत और शत्रुघ्न को जो मुझे प्राणों से भी प्रिय हैं, तुम अपने भाई और पुत्र की भाँति समझना। हे देवी! तुम्हें मेरी यह शिक्षा है कि तुम ऐसा बर्ताव करना जिससे कोई तुमसे बुरा न माने। मैं अब वन को जाता हूँ। श्रीराम की बातों को सुनकर सीता ने कहा, हे स्वामी! आपके इस कथन को सुनकर तो मुझे हँसी आती है। पत्नी तो अर्धांगिनी होती है। यदि आपको वन जाने की आज्ञा मिली है तो मुझे भी वन जाने की आज्ञा हो चुकी है।

स्त्री के लिए पिता, पुत्र, भाई-बन्धु, माता, सखी-सहेलियों में कोई भी उसके काम नहीं आता। स्त्री के लिए तो इस लोक में तथा

परलोक में पति ही सब कुछ है। यदि आप आज ही वन को जा रहे हैं तो मैं आपके आगे कुश और काँटों को हटा मार्ग साफ करती हुई पैदल ही चलूंगी। हे वीर! मैं नित्य नियमपूर्वक, काम-भोगों को छोड़कर ब्रह्मचारिणी रहती हुई आपके साथ मधुर गंधयुक्त वनों में विचरूँगी। मैं वन में उत्पन्न फल-मूलों से ही नित्य अपना निर्वाह कर आपके साथ वन में रहूँगी, आपको कोई कष्ट नहीं दूँगी। हे राघव! यदि तुम्हारे बिना मुझे स्वर्ग में भी रहना पड़े तो मुझे वह भी पसन्द नहीं है।

सीता के इन वचनों को सुनकर श्रीराम ने वन के कष्टों का वर्णन करते हुए कहा कि वन भयंकर पशुओं, पैर में लिपटने वाली बेलों और काँटों से पूर्ण रहते हैं। वहाँ भूमि पर सोना होता है, फल-मूल खाकर ही सन्तोष करना पड़ता है, वृक्षों की छाल ही पहननी पड़ती है, वनों में बड़े वेग से आँधी चला करती है, बड़े-बड़े अजगर वहाँ घूमा करते हैं। वहाँ बिच्छू, कीड़े, मकौड़े, मक्खियाँ और मच्छर नित्य सताया करते हैं। इस प्रकार और भी अनेक दुःख होते हैं। अतः तू यहीं रह, वन जाने की इच्छा न कर। वन के इन दुःखों और कष्टों को सुनकर सीताजी अपने निश्चय से तनिक भी विचलित नहीं हुई। उन्होंने कहा–

हे राम! वनवास में जो दोष तुमने बतायें हैं वे सब तुम्हारे स्नेह के सामने मुझे गुणहीन दिखाई पड़ते हैं। हे नाथ! स्त्री के लिए तो पति ही देवता है, अतः आप मुझे साथ ले चलिये। यदि तुम मुझ दुःखिनी को अपने साथ नहीं ले जाओगे तो मैं विष खाकर, अग्नि में जलकर अथवा पानी में डूबकर अपने प्राण दे दूँगी। इस प्रकार कहकर सीताजी रोने और विलाप करने लगीं। सीता के इस विलाप को सुनकर और उनकी इस दृढ़ता को देखकर श्रीराम का हृदय भी पिघल गया। उन्होंने सीता को साथ चलने की अनुमति प्रदान कर वन-गमन की तैयारी का आदेश दिया।

श्री लक्ष्मणजी भी एक स्थान पर खड़े होकर राम और सीता के वार्तालाप को सुन रहे थे। जब उन्होंने देखा कि सीता को वन जाने की आज्ञा मिल गई है तो उन्होंने श्रीराम के चरणों में प्रणाम कर राम और

सीता से कहा कि यदि आप मृगों और हाथियों से भरे वन में जाने का निश्चय कर चुके हैं तो मैं धनुष पर बाण चढ़ाये आपके आगे-आगे चलूँगा। लक्ष्मण को वन-गमन के लिए उद्यत देख श्रीराम ने कहा कि हे लक्ष्मण! तुम मेरे स्नेही, धर्म में रत, शूर, सदैव सन्मार्ग पर चलने वाले, प्राण के समान प्रिय, छोटे भाई और मित्र हो। अतः तुम्हारे साथ चलने से मुझे हर प्रकार का सुख प्राप्त होगा। परन्तु तुम भी वन चल दिये तो माता कौशल्या और सुमित्रा की देखभाल कौन करेगा? अतः तुम यहीं रहकर माता-पिता की सेवा करो।

इस प्रकार कार्य करने से न केवल मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति ही प्रदर्शित होगी अपितु तुम्हें पुण्य की प्राप्ति भी होगी। इस पर लक्ष्मणजी ने कहा कि आपके प्रताप से भरतजी माता कौशल्या और सुमित्रा का पालन करेंगे। यदि वह भरत दुष्टता करेगा तो मैं उसे मार डालूंगा इसमें भी सन्देह नहीं है। मुझे तो आप अपना अनुचर बना लें और चलने की आज्ञा प्रदान करें। आपकी इस कृपा से मैं कृतार्थ हो जाऊँगा और साथ ही आपके काम भी आऊँगा। मैं आपके लिए कन्दमूल, फल और तपस्वियों के भोजन करने योग्य वन में उत्पन्न होने वाले शाकपात आदि तथा अन्य वस्तुएँ भी नित्य ला दिया करूँगा। अपने भाई के प्रेम भरे वचनों को सुन राम उन्हें भी साथ ले जाने के लिए सहमत हो गये और उन्हें अपनी माता तथा सुहृज्जनों से आज्ञा और अस्त्र-शस्त्र लाने के लिये कहा। लक्ष्मणजी श्रीराम की आज्ञानुसार सब कार्य कर और अस्त्र-शस्त्रों को लेकर श्रीराम के समीप पहुँच गये।

## 9. पिताजी से अन्तिम भेंट

अब श्रीराम ने लक्ष्मण की सहायता से अपने तथा सीताजी के दिव्याभूषण, रत्न, गौएँ, हाथी-घोड़े, रथ आदि ब्राह्मणों को दान कर दिये। अपने सेवकों को भी खूब धन दिया। फिर वन जाने से पूर्व अपने अस्त्र-शस्त्रों को धारण कर श्रीराम, सीता और लक्ष्मण सहित

अपने पिता और माताओं को प्रणाम करने चले। श्रीराम जिधर से निकलते थे उधर ही लोग हाहाकार करते दिखाई देते थे। कोई दशरथ को धिक्कारता था तो कोई कैकेयी को कोसता था। श्रीराम लोगों की विविध प्रकार की बातें सुनते हुए राजमहल के समीप पहुँचे और उदास मन सुमन्त को वहाँ खड़े देखकर कहा कि पिताजी को सूचना दीजिए कि राम आपके दर्शनों के लिए खड़ा है। सुमन्त महाराज के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि महाराज बड़े ही दुःखी और घबराये हुए हैं। सुमन्त राजोचित अभिवादन के पश्चात् हाथ जोड़कर डरते-डरते कहने लगे कि महाराज! पुरुषसिंह श्रीराम अपनी सारी धन-सम्पत्ति ब्राह्मणों तथा सेवकों में बाँटकर और इष्टमित्रों से विदा लेकर आपके दर्शनों के लिये यहाँ उपस्थित हुए हैं। आपके दर्शन करके वे वनों को पधारेंगे। अतः आप उन्हें दर्शन दीजिए।

सुमन्त की बात सुन महाराज ने उन्हें अपनी सभी रानियों को बुलाने के लिए कहा। सभी रानियों के वहाँ उपस्थित होने पर महाराज ने श्रीराम को अपने पास बुलाया। जब श्रीराम सीता और लक्ष्मण-सहित महाराज के निकट आये तो महाराज दूर से ही हाथ जोड़कर आते हुए श्रीराम को देखकर उन्हें छाती से लगाने के लिए बड़े वेग से आगे बढ़े, किन्तु बीच में ही गिर पड़े और बेसुध हो गये। यह देख रानियाँ हाहाकार करने लगीं। श्रीराम और लक्ष्मण ने दौड़कर पिताजी को दोनों भुजाओं से पकड़कर पलंग पर बैठाया। जब महाराज सचेत हुए तो श्रीराम हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगे, महाराज! आप हम सब के स्वामी हैं। मैं दण्डक वन को प्रस्थान करता हूँ। कृपया लक्ष्मण और सीता को भी मेरे साथ जाने की अनुमति दीजिये। शोक को छोड़कर हम तीनों को विदा कीजिए। यह सुनकर और अपने पुत्र पर एक कृपादृष्टि डालकर महाराज बोले–

**हे राम! मुझे कैकेयी ने वरदान के द्वारा धोखा दिया है, अतः तुम मुझे बन्दी बनाकर बलपूर्वक अयोध्या के राजा बनो।**

पिताजी का यह वचन सुन श्रीराम हाथ जोड़कर बोले कि

महाराज ! आप चिरकाल तक अयोध्या का राज करें । मुझे राज्य की लालसा नहीं है । न ही मैं आपको मिथ्यावादी बनाना चाहता हूँ । मैं प्रसन्नतापूर्वक वन में रहूँगा और 14 वर्ष समाप्त होते ही वापस आकर आपके चरणों का स्पर्श करूँगा । सत्यरूपी पाश में बंधे महाराज श्रीराम से बोले, कि हे राम ! तुम्हारा मन सत्य और धर्म के साथ ऐसा बँधा हुआ है कि संसार की कोई शक्ति उससे तुम्हें हटा नहीं सकती । जाओ, तुम्हारा कल्याण हो । मैं जानता हूँ कि तुम केवल मुझे सत्यप्रतिज्ञ सिद्ध करने के लिए यह दारुण दुःख उठा रहे हो परन्तु पुत्र सत्य जानो मुझे तुम्हारा वन जाना कदापि अभिमत नहीं है ।

यह सुन श्रीराम ने कहा, महाराज ! यह राज्य, धन-धान्य तथा अन्य जो कुछ आप मुझे देना चाहते थे वह सब भरत को दे दें । मैं न राज्य चाहता हूँ और न अन्य किसी प्रकार का सुख । मैं तो आपको मिथ्याभाषण से छुड़ा सत्यवादी सिद्ध करना चाहता हूँ । आप देवता-स्वरूप हैं । आपके सामने मैं यह सत्य ही कह रहा हूँ—मैं अब एक क्षण के लिए भी यहाँ ठहर नहीं सकता । 14 वर्ष पूरे होते ही मैं लौट आऊँगा । अतः आप मेरे लिए दुःखी न हों । यह सुन शोक और दुःख से संतप्त महाराज दशरथ ने श्रीराम को हृदय से लगाया और मूर्च्छित हो गये । रानियाँ भी रोने और विलाप करने लगीं । सुमन्त भी मूर्च्छित हो गये । राजभवन में सर्वत्र हाहाकार मच गया । जब सुमन्त सचेत हुए तो उन्होंने क्रुद्ध होकर कैकेयी से कहा कि हे देवी ! जब तुमने अपने पति को त्याग दिया तो फिर संसार में ऐसा कौन-सा दुष्कर्म है जो तुम नहीं कर सकती ? तुम अपने पति और कुल को ही समाप्त करना चाहती हो । अच्छी बात है, तेरा पुत्र भरत राज्य करे । हम लोग तो वहीं जायेंगे जहाँ श्रीराम जायेंगे । मुझे तो आश्चर्य है तेरा दुष्टाचरण देखकर यह पृथिवी फट क्यों नहीं जाती ? अभी भी कुछ नहीं बिगड़ा है । तू ऐसा उपाय कर कि श्रीराम का राज्याभिषेक हो और महाराज दशरथ इक्ष्वाकूवंश-परम्परा के अनुसार बने रहें ।

इस प्रकार सुमन्त ने कैकेयी को बहुत दुःखी किया परन्तु उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ । तब महाराज दशरथ ने सुमन्त को आज्ञा दी कि

राम के साथ भेजने के लिए एक चतुरंगिणी सेना तैयार करो। नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र और कोश तथा अन्न के भंडार भी इनके साथ भेजो। यह सुनकर कैकेयी डरी। उसका मुख सूख गया और इस आदेश का विरोध करते हुए वह कहने लगी कि भरत को धनहीन और जनशून्य राज्य नहीं चाहिये। जिस प्रकार आपके ही वंश में राजा सगर ने अपने पुत्र असमंज को निकाल दिया था उसी प्रकार राम भी बिना सेना के जाये। इस पर सिद्धार्थ नामक प्रधानमंत्री ने कहा कि हे देवी! असमंज और श्रीराम का क्या सादृश्य? असमंज तो दुष्ट-बुद्धि था। वह सड़क पर खेलते बालकों को सरयू में फेंक दिया करता था परन्तु श्रीराम ने कौन सा दुष्टकर्म किया है जिससे उन्हें निर्वासित किया जाये? कैकेयी के पास इसका कोई उत्तर नहीं था। इस अवसर पर श्रीराम ने कहा, महाराज! जब मैं सब भोगों को छोड़ चुका तब मेरे साथ धन-सम्पत्ति और सेना आदि के जाने की क्या आवश्यकता है? हमें तो वल्कल-वस्त्र और कन्दमूल खोदने के लिए एक खनित्री चाहिये।

यह सुनते ही कैकेयी स्वयं वल्कल ले आई और श्रीराम से कहने लगी कि लो, इन्हें धारण कर लो। श्रीराम ने अपने वस्त्र उतारकर वल्कल धारण कर लिये। लक्ष्मणजी ने भी वैसा ही किया। परन्तु वल्कल पहनने में अकुशल सीता उसका एक छोर गले में डाल लज्जित हो खड़ी रही। फिर श्रीराम से उसके पहनने की विधि पूछने लगी। तब श्रीराम ने अपने हाथ से रेशमी साड़ी के ऊपर वल्कल बाँध दिया। यह देखकर अन्तःपुर की सब स्त्रियाँ रोने लगीं। सीता को चीर धारण किये देख महर्षि वसिष्ठजी ने कहा कि अरे कुलकलंकिनी! तूने महाराज को धोखा दिया है। अतः सीता वन में नहीं जायेगी अपितु राम के स्थान पर सीता राजसिंहासन पर बैठेगी। यदि सीता वन में गई तो और अयोध्यावासी भी वन में ही जायेंगे। भरत और शत्रुघ्न भी हमारे ही साथ जायेंगे। फिर तू इस मनुष्यविहीन अयोध्या पर राज्य करना। जब तूने सीता के लिए बनवास ही नहीं माँगा तब उसे उत्तम वस्त्र और आभूषण पहनकर सौभाग्यवती स्त्री की भाँति वन जाने दे।

सीता को वल्कल वस्त्र धारण किये देखकर वहाँ उपस्थित लोग

चिल्लाये—दशरथ, आपको धिक्कार है ! महाराज बड़े दुःखी हुए और उन्होंने कैकेयी से कहा कि सीता जो हर प्रकार से सुख भोगने योग्य है, कुश-चीर धारण करके वन में न जायेगी । श्रीराम ने अब उन्हें पुनः धैर्य दिया और माता कौशल्या का विशेष ध्यान रखने का आग्रह किया । इस सब परिस्थितियों से महाराज दशरथ का दुःख इतना बढ़ गया कि उन्हें बार-बार मूर्च्छा आती थी । अन्ततोगत्वा उन्होंने आँखों में आँसू भर सुमन्त को रथ लाने तथा सीता के लिए अच्छे वस्त्र और बहुमूल्य आभूषण लाने का आदेश दिया । सीता ने उत्तम वस्त्र धारण किये । तत्पश्चात् कौशल्या ने उसे हृदय से लगा पतिव्रत-धर्म का सुन्दर उपदेश दिया । उसे सुनकर सीता ने कहा कि मैं आपकी आज्ञा का पालन करूंगी । जैसे चन्द्रमा की शोभा चन्द्रमा से अलग नहीं हो सकती, इसी प्रकार मैं भी अपने धर्म से विचलित नहीं हो सकती ।

प्रस्थान से पूर्व श्रीराम ने कौशल्या को एक बार पुनः समझाया, उनसे दुःखी न होने और पिताजी की देखभाल करने की प्रार्थना की । फिर उन्होंने अन्य माताओं को प्रणाम किया और कहा कि यदि जाने और अनजाने में मुझसे कोई अपराध हो गया हो तो आप सब उसे क्षमा करना । श्रीराम के इन वचनों को सुन महल की सारी देवियाँ रो पड़ी । इसके पश्चात् राम, लक्ष्मण और सीता ने महाराज की प्रदक्षिणा की । पिताजी से आज्ञा मांग राम ने कौशल्या को प्रणाम किया । लक्ष्मणजी ने भी कौशल्या को प्रणाम करने के पश्चात् अपनी जननी के चरण छुये । उस समय सुमित्रा ने कहा—

**हे वत्स ! तुम घर छूटने का शोच मत करना । श्रीराम को महाराज के समान, जानकी को मेरे समान और वन को अयोध्या के समान समझना । जाओ, तुम सुखपूर्वक गमन करो ।**

## 10. वन की ओर और गुहनिषाद से भेंट

सुमित्रा इस प्रकार उपदेश कर रही थी कि सुमन्त ने आकर निवेदन किया कि रथ तैयार है, आप आरूढ़ हों । सबसे पूर्व सीताजी रथ पर सवार हुई, तत्पश्चात् श्वसुर द्वारा दिये हुए सीताजी के

वस्त्र-आभूषणों और अस्त्र-शस्त्रों को रथ में रख श्रीराम और लक्ष्मण भी बैठ गये। सुमन्त ने रथ हाँक दिया। रथ के चलते ही अयोध्या में हाहाकार मच गया। बाल-वृद्ध, नर और नारी, युवक और युवतियाँ, स्त्रियाँ और पुरुष सभी अत्यन्त व्याकुल हो रोते और चिल्लाते हुए रथ क पीछे चल दिये। लोग लक्ष्मण के सौभाग्य की सराहना करते थे और रथ को धीरे-धीरे चलाने के लिए कहते थे।

उधर महाराज दशरथ भी 'मैं अपने प्रिय पुत्र को देखूँगा' यह कहते हुए पैदल ही राजद्वार से निकल पड़े। सब रानियाँ भी रोते हुए उनके साथ निकलीं। पिता और माताओं को अपने रथ के पीछे पैदल चलते देख श्रीराम ने रथ को शीघ्र चलाने की आज्ञा दी। सुमन्त ने रथ को तेज कर दिया। मन्त्रियों ने महाराज से निवेदन किया कि जिसका शीघ्र पुनरागमन चाहे उसे पहुँचाने के लिए दूर तक नहीं जाना चाहिए। यह शास्त्रोक्त वचन सुनकर महाराज दशरथ वही ठहर गये और जब तक रथ के द्वारा उड़ी धूलि दिखाई देती रही वे उधर ही देखते रहे। जब धूल दिखाई देनी बंद हो गई तब महाराज रुदन करते हुए पृथिवी पर गिर पड़े। कौशल्या उन्हें सहारा देकर राजभवन ले गई।

उधर एक अपार जनसमूह राम के पीछे-पीछे चला। श्रीराम ने बहुत प्रयत्न किया कि प्रजा अयोध्या वापस चली जाये परन्तु जनता उनका साथ नहीं छोड़ती थी। चलते-चलते उन्हें तमसा नदी दिखाई पड़ी तो मानो श्रीराम को आगे जाने से रोक रही थी। सुमन्त ने रथ रोककर घोड़े खोल दिये, उन्हें पानी पिलाया और स्नान कराकर तमसा के तट के समीप चराने लगे। सूर्यास्त होने पर सबने संन्ध्या की। तत्पश्चात् लक्ष्मण और सुमन्त ने श्रीराम के लिये एक शय्या तैयार की। श्रीराम और सीता के सो जाने पर लक्ष्मण और सुमन्त रातभर श्रीराम के गुणों का कीर्तन करते रहे। श्रीराम प्रातः बहुत जल्दी उठे। प्रजा अभी सो ही रही थी। श्रीराम उन्हें सोया हुआ छोड़कर आगे चले गये। जब लोग जागे और श्रीराम को वहाँ न पाया तो खोजने लगे। जब श्रीराम नहीं मिले तो 'हा राम! हा राम!' कहते हुए, रोते और विलाप करते अयोध्या लौट आये।

उधर श्रीराम अनेक ग्रामों से होते हुए और छोटी-छोटी नदियों को पार करते हुए गंगा के किनारे पहुँचे और वहीं एक इंगुदी के वृक्ष के नीचे डेरा डाला। यह प्रदेश शृंगवेरपुर से लगता था। वहाँ गुह नामक राजा राज्य करता था। वह श्रीराम का प्राणप्रिय मित्र था। निषादों की चतुरंगिणी सेना का वह स्वामी और राजा था। जब उसने सुना कि श्रीराम उसके प्रदेश में आये हैं तो वह अपने बूढ़े मंत्रियों को साथ लेकर श्रीराम से मिलने के लिए चला। श्रीराम गुह को आते देख लक्ष्मण सहित कुछ दूर आगे जा, गुह से मिले। श्रीराम को तापस वेश में देख गुह बहुत दुःखी हुआ। श्रीराम का आलिंगन कर वह बोला—

**हे राम! अयोध्या की भाँति यह राज्य भी आपका ही है। अतः आज्ञा दीजिए मैं आपकी क्या सेवा करूं। हे महाबाहो! आप जैसा अतिथि बड़े सौभाग्य से प्राप्त होता है।**

यह कहकर वह शीघ्र ही नाना प्रकार की खाद्य सामग्री ले आया और श्रीराम से कहने लगा कि आपका स्वागत है। यह सारा राज्य आपका ही है। आप हमारे स्वामी हैं, हम आपके सेवक हैं। अब आप हमारे राज्य पर शासन कीजिये। ये भक्ष्य, चोष्य, पेय और लेह्य—चार प्रकार के खाद्यपदार्थ, सोने के लिए उत्तम शय्या और घोड़ों के लिए दाना तथा घास सभी कुछ उपस्थित है, इसे स्वीकार करें।

गुह के ऐसा कह चुकने पर श्रीराम ने उसे अपने हृदय से लगाकर कहा कि मैं तो कुशचीर और मृगचर्म धारण करता हूँ। फल तथा कन्दमूल खाता हूँ। आप मुझे पिता की आज्ञा से धर्मपालन में सावधान और वन में विचरने वाला तपस्वी समझें। इन वस्तुओं में से घोड़ों के लिए घास रहने दें, अन्य पदार्थों की मुझे आवश्यकता नहीं है। गुह ने वैसा ही किया। इसके पश्चात् श्रीराम सायं-संध्योपासना कर विश्राम करने लगे। सूर्योदय होने पर श्रीराम ने गुह को गंगा पार करने के लिए एक नाव तैयार करने की आज्ञा दी। जब श्रीराम नाव पर चढ़ने लगे तो सुमन्त ने पूछा कि मेरे लिए क्या आज्ञा है। श्रीराम ने सुमन्त को दाहिने हाथ से स्पर्श करते हुए कहा कि मुझे इतनी ही दूर तक रथ पर आने की आवश्यकता थी; अब तुम रथ लेकर लौट जाओ

और सावधान होकर महाराज के पास रहो। परन्तु सुमन्त खाली रथ लेकर लौटना नहीं चाहते थे। उन्हें समझाते हुए श्रीराम ने कहा कि सुमन्त! मैं तुम्हें अयोध्या क्यों भेज रहा हूँ सुनो।

तुम्हारे अयोध्या लौटने पर तुम्हें देखकर मेरी छोटी माता कैकेयी को यह विश्वास हो जायेगा कि राम वन में चला गया है। श्रीराम के इस वचन को सुनकर सुमन्त इच्छा न होते हुए भी अयोध्या के लिए लौट पड़े। उधर श्रीराम ने गुह से वट-वृक्ष का दूध मंगवाकर अपनी तथा लक्ष्मण की जटा बनाई और नौका में बैठकर गंगा पार हो वनों में विचरण करने लगे। मार्ग में अनेक वन-प्रदेशों को निहारते हुए वे गंगा-यमुना के संगम के समीप महर्षि भारद्वाज के आश्रम पर जा पहुँचे। वहाँ ऋषि को अग्निहोत्र करते देखकर तीनों ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया। मुनि भरद्वाज ने पाद्य और अर्घ्य देकर उन सभी का आदर-सत्कार किया तथा उनके लिए नाना प्रकार के अन्न, रस, फल और मूल प्रस्तुत किये। उनका आतिथ्य स्वीकार करने के पश्चात् जब श्रीराम आसन पर आसीन हुए तो भरद्वाज ने कहा कि हे राम! बहुत दिनों के पश्चात् आज मैं तुम्हें पुनः इस आश्रम में देख रहा हूँ। मैंने यह भी सुना है कि तुम्हें अकारण बनवास मिला है। गंगा और यमुना के संगम पर यह स्थान अति पवित्र, रम्य और एकान्त है। अब आप सुखपूर्वक यहीं निवास करें।

श्रीराम ने उत्तर दिया कि हे मुने! यह स्थान मेरे नगर के बहुत समीप है अतः पुरवासी मुझे और सीताजी को देखने के लिए यहाँ आया करेंगे। इस कारण यहाँ रहना मुझे ठीक नहीं जान पड़ता। कृपा कर आप कोई अन्य एकांत स्थान बतलाइये। तब ऋषि ने उन्हें चित्रकूट पर्वत पर जाने का परामर्श दिया। बातचीत करते हुए रात हो गई। मार्ग चलने के कारण थके हुए श्रीराम ने लक्ष्मण और सीता सहित वह रात वहीं व्यतीत की।

# 11. चित्रकूट में और श्रीराम जी को वापिस लाने का लिये भरत का प्रयत्न

प्रातःकाल ऋषि से आज्ञा ले श्रीराम चित्रकूट की ओर चले। मार्ग में यमुना को पार कर ये चित्रकूट पहुँचे और वहाँ महर्षि बाल्मीकि के दर्शन किये। महर्षि को अपना परिचय दे और अपने आने का कारण बताकर श्रीराम ने लक्ष्मण को एक पर्णकुटी बनाने का आदेश दिया। पर्णकुटी तैयार हो गई तो उन्होंने यथाविधि गृह-प्रवेश किया और फिर पशु-पक्षियों से पूरित, पत्रों और पुष्पों से शोभित उसी वन में आनन्दपूर्वक विहार करने लगे।

प्रिय पाठक गण! श्रीराम को चित्रकूट में छोड़कर अब आप अयोध्या की ओर आइये। गुह और सुमन्त श्रीराम को टकटकी लगाकर तब तक देखते रहे जब तक वे आँखों से ओझल नहीं हो गये। उनके अदृश्य होने पर गुह तो अपने घर चला गया और सुमन्त अयोध्या को लौट पड़ा। जब सुमन्त अयोध्या नगरी में पहुँचे तो अयोध्या सुनसान, वीरान और शोकाकुल दिखाई देती थी। जब सुमन्त नगरद्वार पर पहुँचे तो हज़ारों निवासियों ने सुमन्त को घेर लिया और पूछा कि श्रीराम कहाँ हैं? सुमन्त ने कहा, श्रीराम और लक्ष्मण गंगा को पार कर वन में प्रविष्ट हो गये और मुझे अयोध्या लौटने की आज्ञा दे गये। सुमन्त के वचनों को सुनकर लोग शोक-सागर में डूब गये और अपने भाग्य को कोसने लगे। सुमन्त रथ को शीघ्रता से हाँकते हुए राजभवन में पहुँचे और महाराज को प्रणाम कर उन्हें श्रीराम का सन्देश कह सुनाया। दोनों भाइयों और सीता के वन जाने का वृत्तान्त सुनकर महाराज दशरथ ने 6 बार 'हा राम!' कहते हुए प्राण त्याग दिये।

महाराज के निधन होने पर अयोध्या सूर्यहीन आकाश की भाँति लगने लगी। सभी रानियाँ और पुरवासी शोकसागर में डूब गये। सभी दुःखी थे। मन्त्रियों ने महाराज के शव को तेल में रख दिया और राज्यसभा को आमन्त्रित किया। राज्यसभा में मन्त्रियों ने वसिष्ठ के

समक्ष अपनी-अपनी वक्तृताएँ दीं और कहा कि इक्ष्वाकुवंशीय किसी पुरुष को आज ही राजा बना देना चाहिए कहीं ऐसा न हो कि राजा के बिना हमारा राज्य ही नष्ट हो जाए। अराजकता के दोष बताते हुए उन्होंने कहा कि राजा के बिना राष्ट्र जीवित नहीं रह सकता। अराजक देश में शान्ति और व्यवस्था समाप्त हो जाती है। पुत्र पिता की आज्ञा का पालन नहीं करता और स्त्री पति के वश में नहीं रहती। अराजक देश में वर्षा समय पर नहीं होती। कृषक खेतों को नहीं बोते। सर्वत्र चोर और डाकुओं का साम्राज्य हो जाता है। स्त्रियाँ व्यभिचारिणी हो जाती है। युवतियाँ आभूषण धारण करके उद्यानों में नहीं जा सकती। लोग घरों के द्वार खोलकर नहीं सो सकते। संस्कृति और सभ्यता समाप्त हो जाती है। अराजक देश में कोई किसी का नहीं होता। मछलियों की भाँति आपस में एक-दूसरे को खा जाते हैं। सत्य, धर्म और शुभ गुणों के प्रसार के लिए तथा दुष्टात्माओं का शासन हटा कर बुराई को रोकने के लिए राजा की परमावश्यकता है।

राजा ही सत्य और धर्म का प्रवर्तक है। राजा ही कुलीनोचित कुलाचार का प्रवर्तक है। राजा ही प्रजा की माता और पिता है तथा राजा ही प्रजाजनों का हित-साधन करने वाला है। अतः आज ही किसी को राजा बना दीजिये। इन वक्तृताओं को सुनकर महर्षि वसिष्ठ ने भरत और शत्रुघ्न को बुलाने के लिए विश्वासपात्र और शीघ्रगामी दूतों को भेजा और कहा कि तुम भरत और शत्रुघ्न को लेकर शीघ्र लौट आओ। परन्तु सावधान! महाराज की मृत्यु, श्रीराम के बनवास आदि की कोई बात न कहना। दूतों से महर्षि वसिष्ठ का संदेश पाकर भरत बिना किसी विलम्ब के तुरन्त अयोध्या के लिए चल पड़े। जब वे अयोध्या के निकट आये तब अयोध्या उन्हें शोभा और श्रीविहीन जान पड़ी। नगर में जीवन का कोई चिह्न दिखाई न देता था। उद्यान उजड़े हुए दिखाई देते थे। हाथियों की दहाड़ और घोड़ों की हिनहिनाहट भी सुनाई नहीं देती थी। इस प्रकार के अनिष्टों को देखते हुए उदास-मन भरतजी ने अपने पिता के घर में प्रवेश किया।

पिताजी को वहाँ न पाकर वे अपनी माता के घर में आये। कैकेयी अपने पुत्र को आया देख अति प्रसन्न हुई और कैकय देश के समाचार पूछे। वहाँ का समस्त वृतान्त सुना भरत ने पूछा कि "पिताजी कहाँ हैं?" तब कैकेयी ने महाराज दशरथ के निधन, श्रीराम, लक्ष्मण, सीता का बनवास, भरत के लिए राज्य आदि सभी बातें कह सुनाई।

माता के वचनों को सुनते ही भरत शोकाकुल होकर पृथिवी पर गिर पड़े और जोर-जोर से विलाप करने लगे। उनके रुदन की आवाज़ सुनकर पुत्रशोक से दुर्बल और कान्तिविहीन कौशल्या भरत से मिलने चली। उधर भरत शत्रुघ्न को साथ ले कौशल से लिपटकर रोने लगे। कौशल्या भी अत्यंत दुःखी हो भरत से कहने लगीं कि भरत! तुम्हें राज्य की कामना थी। अब यह निष्कण्टक राज्य तुम्हारा है। माता के वचनों को सुनकर भरतजी ने कहा कि माता! मैं इन बातों से सर्वथा अनभिज्ञ था अतः मैं दोषी कैसे हो सकता हूँ? यह कहकर वे अनेक प्रकार की शपथ खाकर माता को विश्वास दिलाने लगे। शपथ खाते-खाते वे दुःखित हो पृथिवी पर गिर पड़े। तब कौशल्या बोलीं कि पुत्र! मैंने देख लिया तू धर्म से विचलित नहीं हुआ। तू सत्यप्रतिज्ञ है।' ऐसा कहकर और भरत को अपनी गोद में लेकर वह पुनः रोने लगीं। भरत भी रोते रहे। इसी प्रकार रोते और विलाप करते वह रात व्यतीत हो गई। प्रातःकाल महर्षि वसिष्ठजी के आदेशानुसार भरतजी ने महाराज दशरथ के शव की अन्त्येष्टि क्रिया सरयू नदी के किनारे वेद-मंत्रों, सुगन्धित द्रव्यों और घृताहुतियों द्वारा की। इसके पश्चात् वसिष्ठ मुनि ने भरतजी को उपदेश देते हुए कहा –

**सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।**
**हानि-लाभ, जीवनु मरनु जसु अपजसु विधि हाथ।।**

अयोध्या काण्ड 17.1

अन्त्येष्टि क्रिया के कई दिन पश्चात् जब भरत और शत्रुघ्न श्रीराम के वन जाने की बातें कर रहे थे, तब उत्तम वस्त्र और आभूषणों से सुभूषित मंथरा उधर आ निकली। उस समय द्वारपालों ने उसे पकड़ कर शत्रुघ्न को सौंप दिया और कहा कि सारे पापों और अपराधों की जड़ यह है। अतः आप जैसा उचित समझे इस दण्ड दें। यह सुन

शत्रुघ्न ने लपककर मंथरा को पकड़ लिया और उसे भूमि पर पटककर घसीटने लगे। शत्रुघ्न को अत्यन्त क्रुद्ध देखकर भरत ने कहा कि भाई! स्त्रियाँ प्राणिमात्र के लिए अवध्य हैं, अतः इसे छोड़ दो। यदि इस कुब्जा के मरने का वृत्तान्त श्रीराम को ज्ञात हो गया तो वे धर्मात्मा तुझसे और मुझसे बात तक न करेंगे। यह सुनकर शत्रुघ्न ने मन्थरा को छोड़ दिया। यह है श्रीराम द्वारा नारी-सम्मान। अन्त्येष्टि क्रिया के चौदहवें दिन राज्यसभा का अधिवेशन हुआ और सभी सभासदों ने भरत से राज्य ग्रहण करने का आग्रह किया। तब भरतजी ने कहा, कि हमारे कुल में ज्येष्ठ राजकुमार ही राज्यसिंहासन पर बैठता है। श्रीराम मेरे बड़े भाई हैं, वे ही राजा होंगे। चतुरंगिणी सेना तैयार कर मैं वन में जाकर भाई राम को वापिस लाऊँगा। यह सुनकर सब लोग भरत की प्रशंसा करने लगे।

दूसरे दिन भरत, तीनों माताएँ, मन्त्रिगण और बहुत से पुरवासी श्रीराम को खोजने के लिए वन में चल पड़े। मार्ग में गुह निषाद को साथ लेकर और महर्षि भरद्वाज के आश्रम में होते हुए ये लोग चित्रकूट पहुँचे। सेना को आश्रम से दूर टिकाकर भरत पैदल ही श्रीराम से मिलने के लिये चले। आश्रम पर पहुँच श्रीराम को जटाजूट धारण किये हुए और मृग-चर्म ओढ़े हुए देखकर भरत अत्यन्त दुःखी हुए। भरतजी ने चाहा कि दौड़कर श्रीराम के चरणों में गिरें किन्तु वहाँ पहुँचने से पूर्व ही वे 'आर्य' कहकर और मूर्च्छित होकर गिर पड़े। श्रीराम ने भरत को उठाकर छाती से लगाया। फिर उन्हें अपनी गोद में बैठा पिताजी का समाचार पूछा इसके पश्चात् राजनीति का बड़ा ही सुन्दर और मनोहर उपदेश दिया। श्रीराम के वचन सुन भरत ने उन्हें पिताजी की मृत्यु का समाचार कह सुनाया। पिताजी की मृत्यु का समाचार सुन श्रीराम, लक्ष्मण और सीता अत्यंत दुःखी हुए। थोड़ी देर पश्चात् महर्षि वसिष्ठ, मन्त्रिगण और तीनों रानियाँ भी वहाँ पहुँच गई। तब भरत अपने मन्त्रियों, प्रजा के मुखियों और सेनापतियों के साथ श्रीराम के समीप बैठकर और हाथ जोड़कर कहने लगे।

हे भाई ! वरदान द्वारा जो राज्य महाराज ने मेरी माता को देकर उसे शान्त किया था, वही राज्य माता ने मुझे दे दिया है। अब मैं उसी राज्य को आपके अर्पित करता हूँ। आप इस निष्कण्टक राज्य का उपभोग कीजिये। भरत के इन शब्दों को सुनकर लोग साधु-साधु कहने लगे। परन्तु श्रीराम ने कहा–

**हे भरत ! मनुष्य अपनी इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकता क्योंकि जीव ईश्वर नहीं है। कर्मफल ही इस जीवात्मा को नाना प्रकार से नाच नचाया करता है। संसार में जितने पदार्थ हैं वे सब नाशवान् हैं, जितने उच्चस्थित जीव हैं वे पुण्यक्षय होने पर नीचे गिरने वाले हैं। उन्नति और अवनति, संयोग और वियोग तथा जन्म और मरण का अटूट संबंध है।**

हमारे पिता तो श्रेष्ठ कर्म करते हुए प्रभु को प्यारे हो गये, उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। तुम शोक त्यागकर अयोध्या लौट जाओ और राज्य कार्य चलाओ। मैं भी पिताजी की आज्ञानुसार कार्य करूँगा। हम दोनों को ही पिताजी की आज्ञा का पालन करना चाहिए। भरत ने पुनः लम्बी वक्तृता दी और श्रीराम से राज्य ग्रहण करने की प्रार्थना की तो उन्होंने कहा कि पूर्वकाल में जब पिताजी ने तुम्हारी माता कैकेयी से विवाह किया था तो उन्होंने तुम्हारे नानाजी से प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारी पुत्री के गर्भ से जो बच्चा उत्पन्न होगा वही राज्य सिंहासन पर बैठेगा। इसके अतिरिक्त देवासुर-संग्राम में तुम्हारी माता के उपकार से सन्तुष्ट हो पिताजी ने उन्हें दो वरदान देने के लिए कहा था। तुम्हारी माता ने एक वर से तुम्हारे लिए राज्य और दूसरे से मेरे लिए वनवास माँगा। महाराज ने भी दोनों वर प्रदान कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण की। पिताजी को सत्यवादी सिद्ध करने के लिए मेरा 14 वर्ष तक वन में रहना और आपको राज्याभिषेक कराना ही उचित है।

*कैसा अद्‌भुत दृश्य है ! एक महान् राज्य को दोनों भाई लोष्ठवत् एक दूसरे के पास फेंक रहे हैं। कैसा उच्चादर्श है ! कितनी उच्च एवं उदात भावना है ! धन्य है वह कुल, जाति और देश जहाँ धर्म के सम्मुख राज्य को तृण के समान तुच्छ समझा जाता है।*

जब भरत श्रीराम को किसी भी प्रकार वापस ले-जाने में समर्थ न हो सके तब जाबालि और महर्षि वसिष्ठजी ने उन्हें समझाने का प्रयत्न किया। परन्तु श्रीराम ने उनकी युक्तियों का भी बड़ी योग्यता से खण्डन करके यह सिद्ध किया कि उनका लौटना किसी प्रकार भी उचित नहीं है। जब श्रीराम किसी भी प्रकार लौटने को तैयार नहीं हुए तो भरत ने एक स्वर्ण-विभूषित खड़ाऊँ श्रीराम के समक्ष रखकर श्रीराम से उनपर चरण रखने के लिए कहा। श्रीराम ने उन खड़ाउओं को पैरों में धारण कर फिर भरत को वापस दे दिया। तब उन खड़ाऊओं को सादर ग्रहण कर भरत ने कहा–

**हे आर्य! अयोध्या के राज्यसिंहासन पर यह जोड़ा ही रक्खा जायेगा। आज से लेकर चौदह वर्ष तक मैं भी जटा-चीर धारण कर और कन्दमूल, फल खाकर तुम्हारे आगमन की प्रतीक्षा करता हुआ नगर से बाहर ही रहूंगा। वहीं से राज्य-कार्य का सम्पादन करूँगा। और यदि चौदह वर्ष समाप्त होते ही आप अयोध्या नहीं पहुँचे तो मैं अग्नि में प्रविष्ट होकर भस्म हो जाऊँगा।**

श्रीराम के 'तथास्तु' कहकर भरत और शत्रुघ्न को हृदय से लगाया, फिर मन्त्री और प्रजा आदि सबका यथायोग्य सत्कार कर सबको विदा किया। भरतजी खड़ाउओं को अपने सिर पर रखकर अयोध्या की ओर चले। लौटते हुए उन्होंने पुनः महर्षि भारद्वाज के प्रति अपनी श्रद्धा और भक्ति प्रकट की। फिर यमुना और गंगा को पार करते हुए शृंगवेरपुर होते हुए वे अयोध्या नगरी में पहुँचे जो महाराज दशरथ और राम के बिना शोभाहीन दिखाई देती थी। अपनी माताओं को अयोध्या पहुँचा भरत और शत्रुघ्न नन्दीग्राम में वास करने लगे और वहीं से राजकार्य सम्पादन करने लगे।

अयोध्यावासियों के चित्रकूट से विदा होने पर श्रीराम ने उस स्थान पर रहना उचित नहीं समझा। कारण, एक तो वहाँ भरत और माताओं से भेंट होने के कारण उनका ध्यान आता रहता था, दूसरे भरत की सेना के वहाँ ठहरने से वहाँ की भूमि और जलवायु भी कुछ

दूषित हो गया था। अतः श्रीराम वहाँ से चलकर अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुँचे। वहाँ ऋषि पत्नी वृद्धा अनसूया ने सीताजी के लिए पतिव्रत धर्म के सम्बन्ध में बहुत ही सारगर्भित और मनोहर उपदेश दिया। एक रात्रि वहाँ बिताकर दोनों कुमार आगे प्रस्थान करने के लिए विदा माँगकर दण्डक वन में प्रविष्ट हुए।

दण्डक वन में उन्होंने अनेक तपस्वियों के रम्य और मनोहर आश्रम देखे। आश्रमों का वायुमण्डल यज्ञ की सुगन्धि और वेदाध्ययन की ध्वनि से पूरित था। हिरण वहाँ निर्भय घूमते थे। वृक्ष फलों से लदे हुए थे। राम जब दण्डक वन में प्रविष्ट हुए तो ऋषियों ने उनका स्वागत किया। श्रीराम ने वह रात्रि मुनियों से सेवित आश्रम में व्यतीत कर अगले दिन घने जंगल में प्रवेश किया। चलते-चलते उन्होंने नर-मांसभक्षी विराध नामक राक्षस को देखा। वह क्रोध में भरकर प्रलयंकारी काल के समान उनकी ओर झपटा, परन्तु श्रीराम और लक्ष्मण ने शीघ्र ही उसको मार डाला। जिस समय श्रीराम और लक्ष्मण उसे भूमि में गाड़ने लगे तो उसकी पूर्वस्मृति लौट आई। उसने श्रीराम और लक्ष्मण को महर्षि शरभंग के आश्रम में जाने के लिए संकेत किया। विराध को भूमि में गाड़ श्रीराम शरभंग आश्रम की ओर चले।

## 12. राक्षसों के संहार की प्रतिज्ञा और शूर्पणखा को दण्ड

एक रात्रि शरभंग के आश्रम में रहकर और उनका आतिथ्य ग्रहण कर अगले दिन जब श्रीराम शरभंग द्वारा बताये सुतीक्ष्णजी के आश्रम को चलने को तैयार हुए तो दण्डक वन के ऋषि और मुनि इकट्ठे होकर श्रीराम के पास आये और कहने लगे कि हे राम! आप जैसे रक्षक के होते हुए भी हम लोग अनाथों की भाँति मौत के घाट उतारे जाते हैं। आप शरणागतवत्सल हैं, अतः हमारी रक्षा कीजिए। आपके अतिरिक्त और कौन है जो हमारी इन राक्षसों से रक्षा कर सके? यह सुनकर श्रीराम बोले–

आप लोगों को मुझसे प्रार्थना करना उचित नहीं है। मैं तो तपस्वियों का आज्ञाकारी हैं। मैं तो आपके कार्य के लिए ही वन में प्रविष्ट हुआ हूँ। मैं सभी राक्षसों को नष्ट कर दूँगा। ऋषियों के लिए श्रीराम के हृदय में कैसी भव्य भावना है! ऋषियों को अभय प्रदान कर श्रीराम सुतीक्षण के आश्रम में पहुँचे। वहाँ भी एक रात व्यतीत कर वे दण्डक वन के लिए प्रस्थानित हुए। मार्ग में सीताजी श्रीराम से कहने लगीं–काम से उत्पन्न होने वाले तीन व्यसन हैं– (1) झूठ बोलना, (2) परस्त्रीगमन और (3) बिना वैर प्राणियों की हिंसा।

हे राघव! झूठ तो न आपने कभी बोला है और न बोलेंगे। धर्म का नाश करने वाली परस्त्रीगमन की अभिलाषा भी आप में कभी नहीं हुई, परन्तु तीसरा दोष अर्थात् बिना वैर दूसरों का वध करना आपमें उपस्थित होने वाला है। अपनी बात को जारी रखते हुए सीता ने कहा कि जैसाकि आप ऋषियों के समक्ष प्रतिज्ञा कर चुके हैं, आप राक्षसों को मारेंगे। इससे मेरा मन घबराता है। शस्त्र पास होने से उपद्रव खड़े हो जाते हैं। हे राम! मैं आपको शिक्षा नहीं देती प्रत्युत स्नेह और आपमें अत्यन्त सम्मान होने के कारण आपको स्मरण कराती हूँ।

सीता के इन स्नेहसिक्त वचनों को सुनकर श्रीराम कहने लगे, हे जनकनन्दिनी! तूने स्नेहपूर्वक जो वचन कहे हैं वे तेरे ही कहने योग्य हैं, परन्तु जैसा तुम जानती हो कि क्षत्रिय लोग धनुष धारण इसलिए करते हैं कि कहीं किसी दुःखी का आर्त शब्द सुनाई न पड़े। फिर दण्डकवासी व दुःखी तपस्वी मुझे अपना रक्षक समझ स्वयं मेरी शरण में आये। ये तपस्वी फल-फूल खाकर और धर्मानुष्ठान करते हुए वन में रहते हैं, फिर भी राक्षस लोग इन्हें तंग करते हैं। इन दुःखी एवं पीड़ित ऋषियों ने स्वयं आकर मुझसे रक्षा की प्रार्थना की है। सत्य तो सदा मेरे जीवन का इष्ट रहा है, अतः अब तो चाहे मुझे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़े, चाहे तुम्हें और लक्ष्मण को भी त्यागना पड़े, परन्तु मैं अपनी प्रतिज्ञा नहीं त्याग सकता, विशेषकर ब्राह्मणों के समक्ष की हुई प्रतिज्ञा को।

तुमने स्नेह और सौहार्द से जो बातें कही हैं उनसे मैं अत्यंत सन्तुष्ट हूँ। इस प्रकार श्रीराम उस वन में रमणीय पर्वत-शृंगों की, वनों और रम्य नदियों की शोभा को निहारते हुए आगे बढ़े। चलते-चलते वे एक आश्रम-मण्डल में पहुँचे। उस आश्रम-मण्डल के ऋषियों के साथ रहते हुए श्रीराम ने 10 वर्ष सुखपूर्वक बिता दिये। इसके पश्चात् वे सुतीक्ष्ण के आश्रम में होते हुए अगस्त्याश्रम में पहुँचे। महर्षि ने फल, मूल, पुष्पों से उनका आदर-सत्कार किया, फिर उन्हें एक दिव्य धनुष और बाणों से भरपूर तरकश तथा एक तलवार प्रदान की। इन अस्त्र-शस्त्रों को प्राप्त कर अगस्त्यमुनि के निर्देशानुसार श्रीराम ने पंचवटी के लिए प्रस्थान किया। पंचवटी की ओर जाते हुए श्रीराम ने मार्ग में एक बड़े भारी शरीर वाले और भयानक गृध्रराज को देखा।

उसे राक्षस समझकर श्रीराम ने पूछा,''तुम कौन हो?'' तब बड़े सौजन्य के साथ और मधुर शब्दों में श्रीराम को प्रसन्न करते हुए उस गृध ने कहा—हे वत्स! मुझे तुम अपने पिता का मित्र जानो। श्रीराम ने उन्हें अपने पिता का मित्र जानकर उनका आदर और सत्कार करके उनका ठीक-ठीक कुल और नाम पूछा। तब उस ब्राह्मण ने अपना नाम और कुल बताया। हे अरिन्दम! मेरा नाम जटायु है और मुझे तुम श्येनी का पुत्र जानो। यदि आप चाहें तो मैं बनवास में आपकी सहायता करूँगा। श्रीराम उसके वचनों को सुन उसे अपने हृदय से लगा, प्रणाम कर पंचवटी में पहुँचे।

यौवन की देहली पर खड़ी कामोन्मत रावण की विधवा और अद्वितीय सुन्दर छोटी बहन श्रीराम की मनोहर छवि पर मोहित हो चुकी थी। राम की हृष्ट-पुष्ट एवं सुगठित बदन की कांति उस राजकुमारी को अपनी ओर आकर्षित कर रही थी। कामदेव के वश में हुई उसकी सुन्दर देह सृष्टि कामाग्नि के आवेग में श्रीराम में लीन हो जाना चाहती थी। वह उनके भुजपाश में बंध जाने को उतावली हो रही थी। वह राम की मनोहर छवि और यौवन देखकर उन्हें अपने सौन्दर्य का पान कराती हुई समीप आकर बोली—

**श्रीमान! राक्षसों के लिए सुरक्षित इस वन में मनुष्य के वेश में योद्धाओं की भाँति अस्त्र-शस्त्र लिए निर्भय होकर घूमने वाले आप कौन हैं? और यहाँ किस उद्देश्य से आये हैं?**

श्री राम ने उत्तर दिया—मेरी बहन! मैं सम्राट् दशरथ का पुत्र रघुवंशी राम हूँ जो अपने अनुज लक्ष्मण एवं पत्नी सीता के साथ अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए यहाँ निवास कर रहा हूँ। अब आप अपना परिचय देने की कृपा करें। मेरा नाम शूर्पणखा है। मैं राक्षसराज रावण महाबली कुम्भकरण एवं विभीषण की अनुजा हूँ और खर-दूषण की भी मुँहबोली बहन हूँ। मेरे सभी बन्धु महान् योद्धा हैं और दक्षिणपथ के इस प्रदेश के नायक हैं। यह कहकर वह इच्छित कामना भरी दृष्टि से राम की ओर देखने लगी। मानो वह उनके द्वारा पहल किए जाने की प्रतीक्षा कर रही थी। राम अपने स्थान पर निश्चल बैठे रहे। शूर्पणखा बोली--हे सुकुमार! मैं आप की भार्या बनना चाहती हूँ। आइए हम दोनों गंधर्व विवाह कर पति-पत्नी बन जायें।

तब राम ने कहा—हे सुमुखी ! मैं विवाहित हूँ, मेरी पत्नी सीता मेरे साथ है और उसके अतिरिक्त सारी स्त्री जाति मेरी माँ, बहन और बेटी के समान है। अब वह लक्ष्मण की ओर फिरी क्योंकि वे भी सुदर्शन एवं युवा थे। उसने लक्ष्मण से भी वही बातें दोहरायी। लक्ष्मण ने इस प्रस्ताव का तर्कसंगत उत्तर दिया। मैं तो राम का छोटा भाई और सेवक हूँ। ऐसी अनुचित बातें आप को शोभा नहीं देती। वह पुनः राम के निकट जाकर बोली – इस दुर्बल और शोभा- विहीन अपनी पत्नी को त्याग दो अन्यथा मैं इसका वध कर दूँगी। राम ने गम्भीर होकर लक्ष्मण से कहा—तात! तुम इस स्त्री को यहाँ से शीघ्र ले जाओ अन्यथा हमको यह हानि पहुँचा सकती है। यह सुनते ही शूर्पणखा व्यग्र हो उठी और उसने राम के पास खड़ी मुस्कराती हुई सीता पर प्रहार कर दिया।

सीता को तत्काल उससे ऐसी कोई अपेक्षा नहीं थी। उसने त्वरित गति से पूरी शक्ति लगाकर शूर्पणखा को पीछे की ओर धकेल

दिया । सीता के धक्के से वह अपना संतुलन खो बैठी और बबूल के एक कांटेदार वृक्ष से टकराई जिससे उसके नाक एवं कानों पर आघात लगा और नासिका से रक्त बहने लगा । यही लक्ष्मण और सीता द्वारा शूर्पणखा का नाक और कान काटना था । वस्तुतः ''नाक काटना'' और ''कान काटना'' यहाँ मुहावरे के रूप में प्रयुक्त हुआ है । जोकि अपमान का सूचक है ।

शूर्पणखा रोती हुई अपने भाई खर के पास पहुँची । खर ने अपनी बहन की यह दशा देख और सारा वृत्तान्त जानकर पहले तो अपने 14 योद्धाओं को श्रीराम के वधार्थ भेजा, परन्तु जब श्रीराम ने उन सब की मिट्टी ठिकाने लगा दी तब खर ने दूषण और त्रिशिरा तथा 14,000 राक्षसों को साथ लेकर श्रीराम पर आक्रमण किया । एक ओर श्रीराम पैदल और अकेले, दूसरी ओर खर, दूषण और 14,000 सेना । घमासान युद्ध हुआ । श्रीराम ने पहले दूषण, त्रिशिरा आदि को मार डाला । पुनः एक अग्निबाण मारकर खर का वध कर दिया ।

खर आदि के मारे जाने पर अकम्पन ने लंका में जाकर रावण के समक्ष सारा वृत्तान्त निवेदन किया । खर और दूषण का वध सुनकर रावण अत्यंत क्रुद्ध हुआ और उसने स्वयं वहाँ जाकर राम और लक्ष्मण का वध करने का निश्चय किया । इस निश्चय को जानकर अकम्पन ने कहा–

**हे राजन् ! श्रीराम बाण-विद्या में निपुण हैं । वे महाबली और पराक्रमी हैं । मेरे विचार में तो समस्त सुर और असुर मिलकर भी उन्हें परास्त नहीं कर सकते । उनको मारने का तो एक ही उपाय है । श्रीराम की भार्या सीता उनके साथ है । वह विश्वसुन्दरी और रत्नजटित भूषणों से भूषित है । तुम उस महावन में जाकर जैसे भी हो छल से, बल से, पराक्रम से श्रीराम की भार्या को उठा लाओ । फिर सीता के वियोग में श्रीराम स्वयं प्राण त्याग देंगे ।**

रावण को यह उपाय बहुत पसन्द आया । दूसरे दिन वह मारीच के पास पहुँचा और इस कार्य में उसका सहयोग माँगा । रावण की बात

सुन मारीच ने कहा कि रावण! तुम्हें यह खोटी सलाह किसने दी? श्रीराम मदमत्त गज और विकराल सिंह के तुल्य हैं। तुम सोते हुए पुरुषसिंह को मत जगाओ और लंका में जाकर अपनी पत्नियों के साथ विहार करो। मारीच के इस प्रकार समझाने पर रावण लंका में लौट आया।

14000 राक्षसों को युद्ध में मरा हुआ देख शूर्पणखा भी लंका पहुँची। अपनी बहन को कुरूप अवस्था में देख और उसके मुख से सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा सुन रावण उसे प्राप्त करने के लिए पुनः मारीच के पास पहुँचा और उससे कहा कि श्रीराम ने मेरी बहन के नाक-कान काटकर उसे कुरूप कर दिया है। अतः मैं जनस्थान से उसकी भार्या को हर लाना चाहता हूँ। तू सब मायाओं में चतुर हो। अतः मेरी सहायता कर। तू चाँदी की बिन्दुओं से युक्त स्वर्ण का मृग बन और राम के आश्रम में जाकर सीता के सामने विचर। तुझे देख सीता राम और लक्ष्मण से कहेगी कि इस हिरण को पकड़ लो। जब राम तुम्हें पकड़ने के लिए चलें तब तुम उन्हें दूर ले जाना और दूर जाकर ठीक राम की बोली में 'हा सीते! हा लक्ष्मण!' चिल्लाना, बस फिर मैं सीता को उठा लाऊँगा। पहले तो मारीच ने रावण को अनेक प्रकार से समझाया परन्तु जब रावण अपने दुराग्रह पर अटल रहा और मारीच के न चलने पर उसे मार डालने की धमकी दी तो मारीच ने सोचा–

**श्रीराम से भी मरना है और रावण से भी। जब दोनों ही के हाथ से मरना है तो रावण की अपेक्षा राम के हाथ से मरना श्रेष्ठ है। ऐसा विचार कर वह रावण के साथ चल पड़ा और दण्डक वन में पहुँच माया-मृग बनकर श्रीराम के आश्रम के समीप विचरने लगा।**

सीता की दृष्टि इस माया-मृग पर पड़ी तो उसने श्रीराम और लक्ष्मण को बुलाकर उस हिरण को दिखाया। उस हिरण को देख लक्ष्मण ने कहा कि मुझे तो यह मृगरूपधारी मारीच दिखाई पड़ता है। भाई! ऐसा मृग तो कभी देखा नहीं गया। अतः निस्संदेह यह सब

बनावट है । उधर सीता हतबुद्धि-सी हुई श्रीराम से बोली—हे आर्यपुत्र ! यह परम मनोहर मृग मेरे मन को हर रहा है । हे महाबाहो ! तुम इसे पकड़ लाओ । मैं इसके साथ खेला करूँगी । सीता के ऐसे वचन सुन श्रीराम लक्ष्मण से बोले, कि सचमुच ऐसा मृग मिलना दुर्लभ है । यदि यह मारीच है तो मैं इसका वध करूंगा । तुम सीता की रक्षा करना । मैं इसे पकड़ने के लिए जाता हूँ ।

श्रीराम को अपनी ओर आता देख माया-मृगरूपी मारीच कभी छुप जाता, कभी निकट आ जाता, कभी कुलांचे भरता हुआ दूर निकल जाता । इस प्रकार छिपता और प्रकट होता हुआ वह श्रीराम को दूर ले गया । अब श्रीराम को पूर्णरूपेण निश्चय हो गया कि यह मृग नहीं मारीच है । अतः उन्होंने एक चमचमाता हुआ बाण मारकर उसके शरीर को विदीर्ण कर डाला । बाण की चपेट से व्यथित हो मारीच भूमि पर गिर पड़ा । मरते समय उसने बनावटी हिरण के शरीर को अपने शरीर से उतारकर फेंक दिया और 'हा सीते ! हा लक्ष्मण !' कहते हुए प्राण त्याग दिये । जब सीता ने पति के कण्ठ-स्वर के सदृश स्वर में 'हा सीते ! हा लक्ष्मण' का आर्त्तनाद सुना तो उन्होंने लक्ष्मण को श्रीराम की सहायता के लिए प्रेरित किया । लक्ष्मण ने सीता को अनेक प्रकार से समझाया कि यह श्रीराम का स्वर नहीं है । श्रीराम को युद्ध में कोई भी परास्त नहीं कर सकता । परन्तु जब सीता ने लक्ष्मण की भर्त्सना की तो विवश होकर उन्हें जाना पड़ा ।

लक्ष्मण अभी कुछ ही दूर गये होंगे कि रावण एक संन्यासी का रूप धारण कर सीताजी के सामने जा पहुँचा । सीताजी ने उसे अतिथि समझ उसका श्रद्धापूर्वक अतिथ्य किया । सीताजी से वार्तालाप करते हुए रावण ने कहा कि मैं लंका का अधिपति रावण हूँ । मैं तुझ पर मोहित हूँ । तू मेरे साथ चल और मेरी पटरानी बनकर आनन्दपूर्वक लंका का शासन कर । रावण के मुख से ऐसे वचन सुन सीताजी ने उसे फटकारते हुए कहा कि तू गीदड़ होकर मुझ दुर्लभ सिंहनी को पाना चाहता है । स्मरण रख, यदि तूने मुझे प्राप्त करने का प्रयत्न किया तो तू

आकाश में चला जा या पाताल में, कहीं भी बच नहीं सकता। सीताजी रावण को धिक्कार और फटकार ही रही थी कि उसने सीताजी को पकड़ आकाशचारी विमान में डाल लंका की ओर प्रस्थान किया। अब प्रश्न उठता है कि सीता हरण के मुख्य क्या कारण थे?

1. दशरथ के साथ रावण की स्थायी शत्रुता थी। उसने अनुभव किया था कि दशरथ के पिता अज के कारण ही उसके पिता विश्रवा को विशाल कौशल साम्राज्य से वंचित होना पड़ा था अन्यथा आज वह उसका स्वामी होता।
2. दशरथ ने अनेक बार असुरों के विरुद्ध युद्ध में इन्द्र की सहायता की जिसके कारण उसे उतनी ही बार पराजय का मुख देखना पड़ा था।
3. उसके सौतेले भाई कुबेर के प्रति प्रतिशोध की भावना।
4. वेदवती द्वारा उसका अपमान, अभिशाप और फिर आत्महत्या।
5. कुबेर के पुत्र नल कुबेर तथा उसकी पत्नी रम्भा द्वारा उसका अपमान।
6. अन्ततः परमप्रिय बहिन शूर्पणखा का अपमान।

सीताजी रोती और विलाप करती हुई 'हा राम! हा लक्ष्मण!' कहकर जोर-जोर से पुकारने लगीं। परन्तु दूर होने के कारण वे सीताजी के करुण-क्रन्दन को न सुन सके। रोते और बिलखते हुए मार्ग में सीताजी ने जटायु को देखा तो उनसे रक्षा की प्रार्थना की। सीता के रुदन को सुनकर जटायु रावण का मार्ग रोककर खड़ा हो गया और उसे युद्ध के लिए ललकारा। दोनों में भीषण युद्ध हुआ। परन्तु रावण युवा, रथ में सवार और अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित था और जटायु वृद्ध व अस्त्र-शस्त्र से विहीन था। अतः रावण ने उसके वक्षस्थल पर प्रहार कर उसे भूमि पर गिरा दिया और सीता को रथ पर चढ़ा पुनः चल पड़ा। अपने को पुनः रावण के वश में देख सीताजी शोक से पीड़ित हो

रावण की अनेक कटुवचन कहती जाती थी। चलते-चलते मार्ग में उनकी दृष्टि पर्वत-शिखर पर बैठे कुछ वानरों पर पड़ी। तब सीता ने अपने कुछ आभूषणों को एक वस्त्र में बाँधकर उन वानरों के बीच में गिरा दिया। रावण ने रोती हुई सीता को अपनी राजधानी लंका की अशोक वाटिका में रख दिया जहाँ सीताजी श्रीराम के वियोग में अपना दुःखमय जीवन काटने लगीं।

## 13. सीता की खोज

इधर श्रीराम जब मृग को मारकर आश्रम की ओर लौटे तो उन्हें लक्ष्मण अपनी ओर आते दिखाई दिये। लक्ष्मण को आते देख श्रीराम सीता के विषय में बहुत चिन्ताकुल हुए। सीता को देखने की अभिलाषा से वे शीघ्रतापूर्वक जब आश्रम में आये तो उन्होंने देखा कि कुटिया खाली है। सीता को पर्णशाला में न देख वे इधर-उधर दौड़कर उसे खोजने लगे। जब श्रीराम को सीता कहीं दिखाई न दी तो वे रुदन करते हुए वृक्षों से पूछने लगे। हे कदम्ब वृक्ष! क्या तुमने मेरी प्रिया सीता को देखा है? इस प्रकार कभी वे बिल्व वृक्ष से पूछते थे तो कभी अर्जुन वृक्ष से, कभी अशोक वृक्ष से तो कभी ताल वृक्ष से। केवल वृक्षों से ही क्या, उन्होंने तो वन-पशुओं से भी पूछा– हे मृग! क्या तुमने मृगनयनी सीता को देखा है?

सारे वन को देखकर एक बार फिर वे आश्रम में आये परन्तु आश्रम को सूना पा श्रीराम शोकसागर में डूब गये। तब लक्ष्मण ने उन्हें सान्तवना देकर सावधान और उत्साहित किया। फिर दोनों भाई गिरि-गुहाओं, पर्वत-कन्दराओं नदी और सरोवरों के तटों पर सीताजी को खोजने लगे। अन्वेषण करते हुए उन्हें रुधिर से लथपथ विशालकाय एक व्यक्ति दिखाई पड़ा। पास जाने पर पता लगा कि यह तो जटायु है। जटायु ने सीताहरण और रावण से युद्ध का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर अपने प्राण त्याग दिये। शोकाकुल दोनों भाइयों ने

गृध्रराज का अन्त्येष्टि-संस्कार किया और सीता की खोज में दक्षिण दिशा की ओर आगे बढ़े। थोड़ी दूर आगे चलने पर उन्हें विशालकाय कबन्ध राक्षस दिखाई पड़ा। उस राक्षस ने दोनों भाइयों को पकड़ लिया। श्रीराम और लक्ष्मण ने भी उसकी भुजाओं को काट उसे मार डाला। मरते हुए उस राक्षस ने श्रीराम को सुग्रीव से मैत्री करने का परामर्श दिया तथा वहाँ तक पहुँचने का मार्ग भी निर्दिष्ट कर दिया।

दोनों राजकुमार कबन्ध द्वारा बताये हुए मार्ग पर अग्रसर हुए। चलते हुए ये पम्पा सरोवर के पश्चिमी तट पर पहुँचे जहाँ शबरी का रमणीक आश्रम था। दोनों भाइयों को अपने आश्रम पर आया देख शबरी ने उन्हें अर्घ्य, पाद्य, आचमन आदि अर्पित करने के पश्चात् फल-मूल उनके समक्ष रखे। हे पुरुषश्रेष्ठ! मैंने आपके लिए पम्पा सरोवर के निकटवर्ती वन से अनेक प्रकार के कन्दमूल फलों को इकट्ठा कर रखा है। शबरी का आतिथ्य ग्रहण कर श्रीराम और लक्ष्मण सुग्रीव से भेंट करने के लिए शीघ्रतापूर्वक पम्पा सरोवर को लाँघकर ऋष्यमूक पर्वत पर अरोहण करने लगे।

**वस्तुतः अरण्य काण्ड रामचरितमानस का सर्वश्रेष्ठ काण्ड है। क्योंकि इसमें श्रीराम ने लक्ष्मण को ज्ञानोपदेश और शबरी को भक्ति का उपदेश दिया। इसके अतिरिक्त श्रीराम ने कुशलता एवं दूरदर्शिता का परिचय दिया क्योंकि उन्होंने समूचे राष्ट्र को जोड़ने का महान् कार्य किया। इस काण्ड में रावण ने सीता हरण किया और श्रीराम ने चुनौति को स्वीकार किया तथा स्थान-स्थान पर स्वयं जाकर राष्ट्र पर आई विपत्ति से लड़ने के लिए लोगों में राष्ट्रीयता की भावना का संचार किया। अतः इसी कारण रामचरितमानस में अरण्यकांड का वही महत्व है जो महाभारत में गीता का और भागवत पुराण में 11वें स्कंद का है।**

# 14. सुग्रीव से मैत्री

गज की भाँति मंदगति से गमन करने वाले, धनुष और तलवार आदि अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित श्रीराम ओर लक्ष्मण को देखकर वानरराज सुग्रीव बड़े भयभीत हुए और उन्होंने अपने मंत्री हनुमान को उनका भेद लेने के लिए भेजा। हनुमान संन्यासी का रूप धारण कर श्रीराम और लक्ष्मण के पास पहुँचे और अत्यंत मधुरवाणी से पूछा—आप लोग कौन हैं? इस वन में क्यों आये हैं? जटा और चीर क्यों धारण किये हुए हैं? तपस्वियों का वेश धारण करके भी आपने धनुष-बाण क्यों धारण किये हुए हैं? अपना परिचय देते हुए उसने कहा कि मैं धर्मात्मा सुग्रीव का मंत्री हूँ और उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। वे आपसे मैत्री करना चाहते हैं। मैं ऋष्यमूक पर्वत से यहाँ आया हूँ। हनुमान के इस वार्तालाप को सुन श्रीराम प्रसन्न हो लक्ष्मण से बोले—

**जो ऋग्वेद में व्युत्पन्न नहीं है जिसने यजुर्वेद को धारण नहीं किया और जो सामवेद का विद्वान् नहीं है, वह इस प्रकार का भाषण नहीं कर सकता। निश्चय ही इन्होंने सम्पूर्ण व्याकरण बारम्बार सुना है, गुरुमुख से पढ़ा है। क्योंकि इतनी देर के भाषण में इनके मुख से एक भी अशुद्ध शब्द नहीं निकला। इतना ही नहीं वार्तालाप करते समय इनके मुख, नेत्र, ललाट भौंहे तथा शरीर का अन्य कोई भी अवयव विकृत नहीं हुआ।**

हे लक्ष्मण! जिस राजा के पास इस प्रकार के दूत हों उसके कार्य निश्चित् रूप से सिद्ध होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। श्रीराम के ऐसा कहने पर लक्ष्मण ने हनुमान से कहा कि हम लोग सुग्रीव से मैत्री करने के लिए ही इस पर्वत पर चढ़ रहे हैं। यह सुन हनुमान श्रीराम और लक्ष्मण को लेकर सुग्रीव के पास पहुँचे। हनुमान जी ने श्रीराम का परिचय देते हुए कहा कि ये दोनों कुमार आपसे मैत्री करने के निमित्त ही यहाँ पधारे हैं। यह सुन सुग्रीव ने कहा कि यदि मेरी मित्रता आपको पसन्द है तो मैं अपना हाथ फैलाता हूँ, आप इसे अपने हाथ से

पकड़कर मित्रता की मर्यादा स्थापित कीजिए। सुग्रीव के ये सुन्दर वचन सुन श्रीराम ने प्रसन्नचित्त होकर सुग्रीव का हस्तालिंगन किया।

इसके पश्चात् हनुमान ने अग्नि प्रकट कर दोनों के मध्य स्थापित कर दी और दोनों ने उसकी प्रदक्षिणा की। इस प्रकार सुग्रीव और राम की मैत्री होने पर दोनों मित्रों ने एक-दूसरे को अपना दुःख सुनाया। श्रीराम के मुख से सीताहरण का वृत्तान्त सुनकर सुग्रीव ने वस्त्र में बँधे और सीता द्वारा डाले गये आभूषण श्रीराम के समक्ष लाकर रखे। उन आभूषणों को देख श्रीराम उन्हें छाती से लगाकर रोने लगे। फिर उन्होंने पहचानने के लिए वे आभूषण लक्ष्मण को दिये। उन्हें देखकर लक्ष्मण बोले कि मैं सीता के बाजूबंद और कुण्डलों को नहीं पहचानता किन्तु उनके पैर के बिछुओं को अवश्य पहचानता हूँ क्योंकि प्रतिदिन चरण-वन्दना के समय में इन्हें देखा करता था।

श्रीराम को दुःखी और व्याकुल देख सुग्रीव ने इन्हें धैर्य और सान्त्वना प्रदान करते हुए कहा कि जो लोग शोक करते हैं, वे कभी सुखी नहीं रह सकते। ऐसे व्यक्तियों का तेज क्षीण हो जाता है। अतः आपको शोक नहीं करना चाहिए। सुग्रीव के ऐसे वचनों को सुन श्रीराम शान्त हुए और फिर सुग्रीव को हृदय से लगाकर बोले कि हे वानर श्रेष्ठ! तुम अपना जो काम मुझसे कराना चाहते हो उसे निःसंकोच होकर कह दो। आपका कार्य अवश्य होगा क्योंकि न तो मैंने पहले कभी मिथ्या बोला है और न भविष्य में कभी बोलूँगा। आपका कार्य करने के लिए मैं प्रतिज्ञा करता हूँ और सत्यतापूर्वक शपथ खाता हूँ।

## 15. बाली वध और हनुमान द्वारा सीता की खोज

श्रीराम की बात सुन सुग्रीव ने बड़े भाई बाली द्वारा अपनी स्त्री रुमा और राज्य के हरण का वृत्तान्त आदि से अंत तक कह सुनाया। श्रीराम ने राज्य-व्यवस्थानुसार बाली को वध के योग्य समझा। अतः श्रीराम सुग्रीवादि को लेकर किष्किन्धा के द्वार पर पहुँचे। सुग्रीव ने

लंगर-लंगोटे कस बाली को बुलाने के लिए भीषण सिंहनाद किया। उस सिंह-गर्जना को सुनकर बाली बाहर आया और दोनों भाइयों में लात, घूंसों और थप्पड़ों से भयंकर युद्ध हुआ। सुग्रीव श्रीराम को अपनी सहायता के लिए तैयार न देख बाली से परास्त होकर ऋष्यमूक पर्वत पर भाग गया और बाली अपने महल में चला गया। श्रीराम भी लक्ष्मण एवं हनुमान के साथ ऋष्यमूक पर्वत पर पहुँचे। बाली का वध न करने का कारण बताते हुए उन्होंने सुग्रीव से कहा कि तुम्हारे दोनों के आभूषण, आकार, डील-डौल और चाल-ढाल एक-दूसरे से बिल्कुल मिलती-जुलती है। अतः मैंने बाण नहीं छोड़ा जो लोग श्रीराम को ईश्वर का अवतार कहते हैं कि वे तनिक श्रीराम के इस कथन पर विचार करें। क्या ईश्वर के लिए सुग्रीव को पहचानना कठिन था?

श्रीराम ने पहचानने के लिए सुग्रीव के गले में एक माला डाल दी और उसे उत्साहित कर पुनः किष्किन्धा के द्वार पर पहुँचे। सुग्रीव ने बाली को पुनः युद्ध के लिए ललकारा। बाली भी अपने महल से निकल पुनः युद्ध में प्रवृत्त हो गया। दोनों गर्जन और तर्जन कर परस्पर लड़ने लगे। जब श्रीराम ने देखा सुग्रीव थक रहा है और उसे सहायता की परमावश्यकता है तो उन्होंने धनुष पर एक अग्नि के समान प्रदीप्त भयंकर बाण का संधान कर बाली की छाती में मारा जिससे बाली भूमि पर गिर पड़ा। बाली को भूमि पर पड़ा देख श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाई उसके समीप चल गये। उन्हें देख बाली उनसे कठोरतापूर्वक बोला कि तुम एक राजा के पुत्र, कुलीन, बलवान और व्रतधारी हो। राजोचित सभी गुण तुममें विद्यमान हैं। मैं समझता था दूसरे के साथ युद्ध में प्रवृत्त मुझ पर तुम तीर नहीं छोड़ोगे। इसलिए तारा के मना करने पर भी मैं सुग्रीव से युद्ध करने के लिए तैयार हुआ था। परन्तु अब पता लगा कि तुम तो कोरी धर्म-ध्वजा उड़ाने वाले अधर्मी और पापाचारी हो।

तुम्हारा वेशमात्र सज्जनों जैसा है परन्तु छिपी हुई आग की भाँति तुम कपटी धर्मानुष्ठानी हो। मैंने तुम्हारे देश या नगर में कोई बुरा काम नहीं किया, फिर मेरी समझ में नहीं आता कि तुमने मुझे क्यों मारा है?

ऐसा घृणित कर्म करके तुम सज्जनों के बीच में क्या कहोगे? हे राजकुमार! यदि तुम मेरे सम्मुख होकर मुझसे लड़ते तो तुम्हें यमराज के दर्शन करा देता। यदि तुम अपना प्रयोजन मुझे बता देते तो मैं रावण को परास्त कर उसे बन्दी बना तुम्हारे पास ले आता। मेरे मरने के पश्चात् सुग्रीव को राज्य मिलना तो ठीक है, परन्तु तुम इस अनुचित कृत्य का लोगों को क्या उत्तर दोगे?

**धर्म हेतु अवतेरहु गोसाईं। मारेहु मोहि ब्याध की नाईं।**
**मैं बेरी सुग्रीव पिआरा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।।**

**अनुज बधू भगिनी सुतनारी। सुनु सठ कन्या सम ए चारी।**
**इन्हहि कुदृष्टि विलोकेई जोईं। ताहि बधें कछु पापे नहोई।।**

—किष्किंधाकाण्ड 8.3-4

बाली श्री राम से कहता है कि हे गोसाई! आपने धर्म की रक्षा के लिये अवतार धारण किया परन्तु मुझे (बाली) को व्याध की भाँति छिपकर मारा है। इस प्रकार मैं आपका शत्रु सिद्ध हूँ और इसके विपरीत सुग्रीव प्यारा। हे नाथ, आपने मुझे किस दोष के कारण मारा?

इसका उत्तर देते हुए श्रीराम ने बाली को उपदेश दिया—

**हे दुष्ट! सुन, छोटे भाई की पत्नी, बहन, पुत्रवधु और कन्या ये चारों समान होती हैं और जो व्यक्ति इन्हें कुदृष्टि से देखता है उसको मारने में कोई दोष नहीं होता है।**

तुम कहते हो मैंने तुम्हें छिपकर क्यों मारा? तो सुनो, तुम्हें छिपकर मारने से न तो मुझे सन्तोष है और न दुःख। अनेक शिकारी लोग जाल अथवा फंदा लगाकर अथवा कपट-व्यवहार से या छिपकर वा प्रकट होकर भागते हुए अथवा निर्भय बैठे हुए मृगों को पकड़ा ही करते हैं। श्रीराम के ऐसा कहने पर बाली को बड़ा पश्चाताप हुआ। उससे कोई भी उत्तर न बन पड़ा। अतः उसने अपने कटु शब्दों के लिए श्रीराम से क्षमा मांगी और सुग्रीव को श्रीराम के कार्य को करने का आदेश देकर अपने पंचभौतिक शरीर को त्याग दिया। कुछ आलोचक श्रीराम द्वारा बाली को छिपकर मारने को राम-जीवन का एक कलंक बताते हैं, परन्तु श्रीराम ने जो कुछ किया राजनीतिकि दृष्टिकोण से वह

सर्वथा उचित ही था। बाली-वध श्रीराम की एक बहुत बड़ी राजनीतिक विजय थी।

बाली और रावण परस्पर मित्र थे। वे दोनों अग्नि को साक्षी कर संधिसूत्र में आबद्ध हुए थे। दोनों ने परस्पर यह प्रतिज्ञा की थी कि यदि कोई व्यक्ति किष्किन्धा की ओर से रावण पर आक्रमण करेगा तो बाली उसे रोकेगा और यदि कोई शत्रु लंका की ओर से बाली पर आक्रमण करेगा तो रावण उसकी सहायता करेगा। यदि श्रीराम रावण पर आक्रमण करते तो निश्चितरूप से बाली श्रीराम से युद्ध करता। ऐसी अवस्था में रावण से लोहा लेने से पूर्व बाली से ही युद्ध छिड़ जाता। अतः श्रीराम ने सुग्रीव से मैत्री करके पहले बाली को समाप्त करना ही उचित समझा। बाली को छिपकर मारना भी श्रीराम की दूरदर्शिता का परिचायक है। यदि श्रीराम बाली के साथ घोषणापूर्वक युद्ध करते तो जिस सेना से उन्हें रावण के साथ युद्ध करना था उसका एक भाग तो यहीं समाप्त हो जाता। अतः श्रीराम ने घोषणापूर्वक युद्ध न करके केवल बाली का ही वध किया।

सीता को शीघ्र ही खोजना आवश्यक था। बाली से युद्ध होने पर पता नहीं कितना समय लग जाता और साथ-ही-साथ युद्ध में जय और जीत किसकी होगी यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता था। इन्हीं सब कारणों से श्रीराम ने बिना व्यर्थ के रक्तपात के केवल बाली को मारकर अपना मार्ग साफ कर लिया। यह श्रीराम की युद्धचातुरी का ज्वलन्त उदाहरण है। श्रीराम ने बाली को पहली बार नहीं मारा। उसे सोचने-समझने और सुग्रीव से मेल करने का अवसर दिया। परन्तु वह नहीं माना। दूसरी बार अपना चिह्न देकर सावधान किया कि सुग्रीव मेरे आश्रित हो चुका है परन्तु फिर भी बाली नहीं माना और सुग्रीव के प्राण लेने पर उतारू हो गया। तब श्रीराम ने अपने मित्र को मृत्युपाश से बचाने के लिए उसका वध किया। अतः बाली को छिपकर मारने में श्रीराम पर कोई दोष नहीं आता। आजकल भी खाई आदि में छिपकर युद्ध होता है। यदि आजकल खाई में

छिपकर छल, कपट और धोखे से शत्रु को मारना उचित है तो श्रीराम द्वारा बाली-वध को अनुचित कैसे कहा जा सकता है ।

एक बात और कि बाली आततायी था । 'वसिष्ठ-स्मृति' के अनुसार आततायी के लक्षण निम्नलिखित हैं –

**आग लगाने वाला, विष देने वाला, हाथ में शस्त्र लेकर निरपराधों की हत्या करने वाला, दूसरों का धन छीनने वाला, पराया खेत छीनने वाला, पर-स्त्री का हरण करने वाला – ये छह आततायी हैं ।**

ऐसे आततायी के वध के लिए मनुजी का आदेश है—आततायी को चाहे वह गुरु हो या बालक, वृद्ध हो या बहुश्रुत-ब्राह्मण, बिना सोचे शीघ्र मार देना चाहिए ।

बाली ने सुग्रीव की स्त्री का अपहरण किया था । अतः वह आततायी था और राम द्वारा उसका वध सर्वथा उचित था । कुछ लोगों का विचार ऐसा है कि जो व्यक्ति बाली के सम्मुख होकर युद्ध करता था उसकी आधी शक्ति बाली में चली जाती थी, अतः बाली सम्मुख होकर युद्ध करने वाले व्यक्तियों को परास्त कर दिया करता था । श्रीराम इस बात को जानते थे । अतः उन्होंने बाली को छिपकर मारा । यह विचार बिल्कुल अशुद्ध है । बाल्मीकि रामायण से इसका समर्थन नहीं होता । बाली की अन्त्येष्टि-क्रिया के पश्चात् सुग्रीव किष्किन्धा के राज्य का उपभोग करने लगे और लक्ष्मण के साथ श्रीराम प्रस्रवण गिरि पर विरह के दिन बिताने लगे। चार मास व्यतीत हो गये परन्तु अपनी व्यस्तताओं में सुग्रीव को श्रीराम के कार्य का ध्यान ही नहीं आया । तब श्रीराम ने लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजा । लक्ष्मण के किष्किन्धा पहुँचने पर सुग्रीव को अपनी भूल ज्ञात हुई और उसने अपनी वानर-सेना को सीता का पता लगाने के लिए चारों दिशाओं में भेजा ।

जिस दल ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया उसमें हनुमान, जाम्बवान, नील, अंगद आदि प्रमुख वानर थे । क्योंकि सीता को रावण ले गया था । अतः सुग्रीव ने हनुमान को विशेष रूप से समझाया और श्रीराम ने उन्हें अपने हाथ की अंगूठी भी दी । जब यह दल समुद्र के

किनारे पहुँचा तो विचार होने लगा कि लंका में कौन जाए? अंत में जाम्बवान् के उत्साहित करने पर हनुमान जी लंका जाने को तैयार हो गये। उन्होंने मन्द्राचल पर्वत से उड़कर लंका की ओर प्रस्थान किया। श्रीहनुमान को आकाश-मार्ग द्वारा लंका की ओर जाते देख वानर-समूह ने हर्ष ध्वनि की और फिर उनके लौटने की प्रतीक्षा करने लगे। उधर हनुमानजी समुद्र पार हो लंका के सौन्दर्य को निहारने लगे।

लंका के चारों ओर खाई खुदी हुई थी और खाई के पार नगर के चारों ओर परकोटा खिंचा हुआ था। उसके भीतर ऊँचे-ऊँचे भव्य भवन खड़े थे जिन पर ध्वजा और पताकाएँ फहरा रही थीं। परकोटे पर बीच-बीच में तोपें रखी हुई थीं। ऐसी सुरक्षित लंका को देखकर हनुमानजी विचारने लगे कि ऐसे विकट दुर्ग पर आक्रमण करके श्रीराम क्या कर सकेंगे। फिर अपने कर्तव्य का निश्चय कर कुछ अंधकार होने पर वे लंका नगरी में प्रविष्ट हुए और सीता को खोजने लगे। जब महलों में उन्हें कहीं सीताजी के दर्शन नहीं हुए तो वे अशोकवाटिका में पहुँचे। वहाँ उन्होंने जल से पूर्ण एक जलाशय देखा। उसे देख श्री हनुमान कह उठे कि सायं और प्रातः संध्या करने वाली सीता इस नदी के स्वच्छ जल में स्नान और संध्या करने के लिए अवश्य आयेगी। ऐसा निश्चय कर हनुमान एक वृक्ष पर चढ़कर और अपने को पत्तों में छिपाकर बैठ गये। प्रातः रावण ने सीता को प्रलोभन देते हुए कहा कि हे भीरु! इच्छानुसार भोगों को भोग, मदिरा पान कर और मेरे साथ रमण कर। तब सीता ने अपने और रावण के बीच में तिनका रखकर रावण से कहा, हे रावण! मेरी ओर से अपने मन को हटाकर अपनी स्त्रियों में लगाओ।

अन्त में रावण उसे डाँट-डपटकर अपने महल में चला गया और राक्षसियाँ सीताजी को डराने-धमकाने और तंग करने लगीं। सीताजी अपने को चारों ओर से विपत्ति में जान कह उठी– धिक्कार है मनुष्य जन्म को और धिक्कार है परतन्त्रता को। अब हनुमानजी ने सीताजी को धैर्य बंधाने का निश्चय कर मनुष्यों जैसी स्पष्ट और शुद्ध वाणी में

श्रीराम का गुणगान आरम्भ किया। सीता उस राम-गुणगान को सुनकर बड़ी विस्मित हुई और इधर-उधर देखने लगीं। फिर 'हा राम! हा लक्ष्मण!' कहकर रोने लगी। तब हनुमान सीता के सम्मुख आये और कहने लगे हे देवी! भयभीत मत होओ। मैं श्रीराम का दूत हूँ। मेरा नाम हनुमान है और आपके विश्वास के लिए सुन्दर वर्ण वाले श्रीराम ने सुन्दर वर्ण दश माशे की यह स्वर्ण की अंगूठी आपके लिए भेजी है। अंगूठी को देखकर सीताजी को विश्वास हो गया। फिर उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मण का वृत्तान्त पूछा।

हनुमान ने सीता के हरण के पश्चात् सुग्रीव से मैत्री तक का सारा वृत्तान्त कह सुनाया और शीघ्र ही लंका पर आक्रमण करने का आश्वासन दे और श्रीराम को दिखाने के लिए चिह्नस्वरूप उनकी चूड़ामणि लेकर वहाँ से चले। हनुमानजी भूख से व्याकुल हो रहे थे, अतः प्रस्थान करने से पूर्व वे राक्षसों द्वारा रक्षित एक वाटिका में पहुँचे और न केवल फलों को ही खाने लगे अपितु वृक्षों को भी तोड़ने लगे। राक्षसों ने मना किया तो दो-चार को मार डाला। रावण ने अपने पुत्र अक्षयकुमार को भेजा तो उसे भी मौत के घाट उतार दिया। अंत में मेघनाद हनुमान को ब्रह्मपाश द्वारा बांध कर रावण की सभा में ले गया। रावण ने हनुमान के वध की आज्ञा दी परन्तु जब विभीषण ने उन्हें समझाया कि दूत का वध उचित नहीं है तो रावण ने कहा कि वानरों की पूँछ उनका अति प्यारा आभूषण होता है। अतः इसकी पूँछ जला दी जाये।

रावण की आज्ञानुसार हनुमान की पूँछ में रुई लपेटकर आग लगा दी गई। परन्तु पूँछ अलग होने के कारण हनुमान को कोई कष्ट नहीं हुआ अपितु उससे उन्होंने सारी लंका को जला डाला। सीता से फिर एक बार मिल कर और उन्हें आश्वासन देकर वे महेन्द्र पर्वत पर अपने साथियों से जा मिले। हनुमान को देख और सीता का समाचार सुनकर वानर हर्ष से गद्‌गद् हो गये। सीता के अन्वेषण की प्रसन्नता में सुग्रीव के प्रिय मधुवन में मधु पीकर और रसीले फलों को खाकर वे

श्रीराम की सेवा में पहुँचे। हनुमान ने सीता से मिलने का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर चिह्न स्वरूप महारानी सीता की चूड़ामणि श्रीराम के हाथों में रख दी। उस चूड़ामणि को पहचान कर और छाती से लगाकर श्रीराम रोने लगे। फिर धैर्य धारण कर उन्होंने हनुमान को धन्यवाद दिया और लंका पर आक्रमण की तैयारी कर दल-बल के साथ लंका की ओर प्रस्थान किया।

नील, गज, गवय, गवाक्ष, महावीर, ऋषभ आदि गन्धमादन बहुत से वानरों को साथ लिये हुए, मार्ग खोजते हुए आगे बढ़े चले जाते थे। श्रीराम और लक्ष्मण महावीर हनुमान और अंगद के कन्धे पर चढ़े सेना के मध्य में चल रहे थे। कुछ वानर-वीर दाएँ-बाएँ और पीछे की ओर से सेना की रक्षा करते हुए चल रहे थे। कुछ सेना को उत्साहित करते जा रहे थे। ऋक्ष, वानर और भालुओं की यह सेना प्रसन्न हो वायु के वेग की भाँति चली जा रही थी। चलते-चलते यह सेना सागर के तट पर पहुँची। सारी सेना को तट पर टिकाकर सागर को पार करने के उपायों पर विचार होने लगा।

## 16. विभीषण की शरणागति और सेतु-निर्माण

उधर हनुमानजी द्वारा मचाई गई हलचल को देखकर रावण चिन्तित हो उठा और लंका की सुरक्षा के लिए उपाय सोचने लगा। इस समस्या पर रावण की सभा दो भागों में विभक्त हो गई। प्रहस्त, निकुम्भ, महोदर, धूम्राक्ष, मेघनाद आदि राक्षसगण युद्ध करने के पक्ष में थे; परन्तु विभीषण रक्तपात के विरुद्ध थे। उन्होंने रावण को परामर्श दिया कि वह सीताजी को श्रीराम को लौटाकर उनके साथ सन्धि कर ले। परन्तु रावण के सिर पर तो काल सवार था। उसे अपने भाई का यह परामर्श अच्छा नहीं लगा। रावण ने उसे खूब धिक्कारा, फटकारा और अपमानित किया। रावण द्वारा अपमानित हो विभीषण वहाँ पहुँचा जहाँ लक्ष्मण के साथ श्रीराम विराजमान थे। वहाँ सुग्रीव और

अन्य वानर-यूथपतियों को देख विभीषण ने उच्च स्वर से कहा, कि मैं राक्षसराज रावण का छोटा भाई हूँ। मेरा नाम विभीषण है। मैंने अनेक युक्तियों और तर्कों से रावण को समझाया कि तू सीताजी को सम्मानपूर्वक श्रीराम को लौटा दे, परन्तु उसे मेरी बात उल्टी लगी। उसने मेरा अनादर किया है और कठोर वचन कहे हैं। अतः अब मैं अपने स्त्री-बच्चों को वहीं छोड़ श्रीराम की शरण में आया हूँ। आप श्रीराम को सूचना दें।

विभीषण को शरण में लिया जाये अथवा न लिया जाये इस विषय में रामदल में भी दो विभाग हो गये। वानरराज सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान्, मयन्द आदि विभीषण को अपने साथ मिलाने में असहमत थे, परन्तु हनुमानजी उन्हें अपने पक्ष में लेने के समर्थक थे। दोनों प्रकार की सम्मतियों को सुनकर श्रीराम ने कहा कि जो एक बार भी मेरी शरण में आ जाये और कह दे कि मैं तुम्हारा हूँ तो मैं उसे सब प्राणियों से निर्भय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है। जैसे तुलसीदास रामचरितमानस में लिखते हैं—

**निर्मल मन जन सो मोहि पावा।**
**मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।** —(सुन्दर काण्ड) 43.3

विभीषण जब अपने बड़े भाई रावण को छोड़कर श्रीराम की शरण में आना चाहता है। सुग्रीव आदि को उस पर शक होता है। जब सुग्रीव उसके आगमन की सूचना श्रीराम को देता है तो राम उसे अपनी शरण में आने की आज्ञा देते हैं। उस समय श्रीराम सुग्रीव को समझाते हुये कहते हैं कि यदि विभीषण के हृदय में पाप होगा तो वह मेरे सामने नहीं आयेगा। यदि वह पापों का प्रायश्चित करना चाहता है तो उसे अवश्य अवसर प्रदान करना चाहिये। अतः उसे मेरी शरण में ले आइए।

उस समय श्रीराम सुग्रीव को उपदेश देते हुये कहते हैं कि सुग्रीव ने विभीषण को कपटी कहा था। परन्तु श्रीराम इसका खण्डन करते हुए कहते हैं कि मैं दुष्ट हृदय वाले व्यक्ति को नहीं प्राप्त होता क्योंकि मुझे कपट व छल-छिद्र अच्छा नहीं लगता। अतः जो मनुष्य शुद्ध मन

वाला होता है जिसके भाव एवं विचार निर्मल होते हैं वही मेरी कृपा प्राप्त कर मेरे दर्शनों को आता है। इसका दूसरा भाव यह भी है कि यदि कोई कपट व छल युक्त हो और फिर भी मेरी शरण में आ जाने से वह निर्मल हो जाता है। कवि के कहने का भाव यह है कि प्रभुमिलन के लिये हृदय की शुद्धता परमावश्यक है। यदि आपका हृदय शुद्ध होगा तो अहंकार भी नहीं रहेगा। जैसे कबीर के शब्दों में :–

**कबीर मनु निरमलु भइया जैसे गंगा नीरु।**
**पाछै लागो हरि फिरै कहत कबीर कबीर।।**

–श्रीगुरुग्रंथसाहिब पृ० 1367

अतः हे कपिश्रेष्ठ! तुम विभीषण को ले आओ, मैंने उसे अभय कर दिया। जब विभीषण श्रीराम के समक्ष आये तो उन्होंने उसे छाती से लगा लिया और लक्ष्मण से कहा, समुद्र से जल लाओ और उस जल से इन्हें राक्षसों के राज्य-सिंहासन पर अभिषिक्त कर दो। लक्ष्मण ने आज्ञा पाते ही उनका राज्याभिषेक कर दिया। विभीषण लंकेश बन गये। सुग्रीव ने एकान्त पाकर श्रीराम से कहा कि यदि इसी प्रकार रावण भी आपकी शरण में आ जाये तो फिर क्या होगा? क्या लंका का राज्य उसे नहीं दिया जायेगा? श्रीराम ने हँसते हुए कहा कि लंका तो विभीषण की ही होगी। यदि रावण आयेगा तो उसके लिए अयोध्या तैयार है–यह है श्रीराम की शरणागत वत्सलता!

सागर को पार करने का विचार तो हो ही रहा था; अब पुनः विचार होने लगा। विभीषण ने कहा, सागर पर सेतु का निर्माण किए बिना इसे पार करना असम्भव है। यह परामर्श श्रीराम को भी बहुत पसन्द आई। उन्होंने कहा कि हे लक्ष्मण! विभीषण की यह सम्मति मुझे भी पसन्द है कि सागर पर पुल निर्माण किये बिना लंका-विजय नहीं हो सकती। सभी वानरों ने भी इस परामर्श को पसन्द किया। तब विश्वकर्मा के पुत्र ने सेतु-निर्माण के लिए अपनी सेवाएँ समर्पित की। उसकी सहायता के लिए महाकाय और महाबली वानर-वीर यंत्रों द्वारा पर्वतों से गिरा-गिराकर हाथी के समान आकार वाले बड़े-बड़े पत्थरों को लाने लगे और नल के आदेशानुसार उन्हें सागर में लगाने लगे। 5

दिन के कठोर परिश्रम से 58 मील लम्बा पुल तैयार हो गया तथा श्रीराम की सम्पूर्ण सेना इस पुल पर होकर लंका में पहुँच गई और लंका पर आक्रमण करने की विधियों पर विचार होने लगा।

## 17. अंगद का दौत्यकर्म और युद्ध की घोषणा

लंका पहुँचने पर श्रीराम ने समस्त सेना की चार भागों में बाँट दिया। उत्तर द्वार पर लक्ष्मण सहित श्रीराम स्थित हुए। नील ने पूर्व-द्वार को, अंगद ने दक्षिण-द्वार और हनुमान ने पश्चिम द्वार को जा घेरा। इस प्रकार चारों द्वारों पर सेना को स्थापित कर श्रीराम ने अंगद को दूत बनाकर रावण के पास यह सन्देश भेजा–

**हे रावण! यदि तू मेरी शरण में आ, सीता को मुझे समर्पित नहीं करेगा तो यह धर्मात्मा और राक्षस श्रेष्ठ विभीषण जो मेरी शरण में आ चुका है, निश्चय ही लंका का अकण्टक ऐश्वर्य पायेगा और यही लंका का राजा होगा।**

रावण के दरबार में पहुँच कर अंगद ने कहा, ''मैं बाली का पुत्र हूँ। मेरा नाम अंगद है और मैं श्रीरामचन्द्र जी का दूत हूँ। श्रीराम ने आपके लिए सन्देश भेजा है कि सम्मानपूर्वक सीताजी को मुझे लौटा दो अन्यथा भाई-बन्धुओं सहित मैं तुम्हें यमलोक भेज दूंगा। यह सुनकर रावण ने उसे पकड़कर मार डालने की आज्ञा दी। चार भयंकर राक्षसों ने अंगद को पकड़ लिया। अंगद ने एक झटके में ही उन्हें नीचे गिरा दिया और सिंह गर्जना करते हुए रामदल में लौट आये। अंगद ने पृथिवी पर अपना पैर जमाया था और राक्षस प्रयत्न करके भी उसे न उठा सके, यह बात सम्पूर्ण बाल्मीकि रामायण में कहीं भी नहीं है।

श्रीराम ने युद्ध की घोषणा कर दी। युद्ध की आज्ञा मिलते ही वानरों ने भीषण सिंहनाद किया और लंका के परकोटों, द्वारों और उद्यानों का विध्वंस करने लगे। वे चारों ओर से लंका पर आक्रमण ओर सुग्रीव की जय-जयकार करने लगे। उधर रावण के मुख से युद्ध की आज्ञा सुनकर राक्षस भी गर्जन और तर्जन करने लगे। दोनों ओर

से भयंकर युद्ध होने लगा जिसमें हज़ारों राक्षसों का संहार हुआ। राक्षसों और वानरों का यह युद्ध बड़ा ही भयंकर था। इस युद्ध में रक्त की नदियाँ बह निकली और पृथिवी भी लाल हो गई। थोड़ी ही देर मे प्रमुख वानर और राक्षस वीरों में द्वन्द्व-युद्ध होने लगा। अंगद और मेघनाद, हनुमान और जम्बुमाली, सुग्रीव और प्रवसेन, लक्ष्मण और विरूपाक्ष, सुषेण और विद्युन्माली परस्पर भिड़ गये। अन्य बहुत से वानर भी दूसरे राक्षसों के साथ युद्ध करने लगे। हनुमान ने जम्बुमाली, नल ने प्रतपन, सुग्रीव ने प्रवसेन को और लक्ष्मण ने विरूपाक्ष को मार दिया।

युद्ध करते हुए रात्रि हो गई, परन्तु युद्ध बंद नहीं हुआ। चारों ओर मारो-काटो का कोलाहल सुनाई पड़ता था। अनेक वीर मारे गये। इस युद्ध में अंगद ने बड़ी वीरता दिखाई। अंगद ने मेघनाद के सारथी और घोड़ों को फुर्ती से मार डाला। अंगद की यह वीरता देख सभी वानर तथा सुग्रीव और विभीषण भी वाह-वाह कह उठे। अपनी पराजय से दुःखित होकर मेघनाद ने छिपकर बाण बरसाना आरम्भ किया और राम तथा लक्ष्मण दोनों भाइयों को नागपाश में बांधकर अपनी विजय का समाचार लंका में जा सुनाया। सारी लंका में आनन्दोत्सव मनाया जाने लगा।

इधर नागपाश में जकड़े होने पर भी श्रीराम सचेत हुए और लक्ष्मण की अवस्था को देख दुःखी होकर कहने लगे कि जब मैं अपने भाई को युद्धक्षेत्र में पराजित हो अचेत पड़ा देख रहा हूँ तब मैं सीता को लेकर क्या करूँगा और स्वयं भी जीवित रहने से क्या लाभ! इस संसार में खोजने से सीता के समान स्त्री मिल सकती है परन्तु लक्ष्मण के समान भाई, सहायक और चतुर योद्धा नहीं मिल सकता। यदि कहीं लक्ष्मण मर गये तो मैं भी वानरों के समक्ष अपने प्राण त्याग दूँगा। कैसा भ्रातृप्रेम है! श्रीराम के विलाप से वानर भी रोने लगे। इतने में गरुड़ जी वहाँ आये अपनी नागपाश-मोचन विद्या के प्रभाव से दोनों भाइयों को स्वस्थ कर चले गये। श्रीराम को नीरोग और स्वस्थ देख रामदल में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। वानरगण सिंहनाद करने लगे। भेरी और मृदंग बाजे बज उठे। वानर-वीर पुनः युद्ध करने के लिए तैयार हो गये।

इस हर्षनाद को सुनकर रावण को संदेह हुआ। दूतों द्वारा समाचार मिला कि राम और लक्ष्मण सकुशल है। यह सुनकर रावण का मुखमण्डल निस्तेज हो गया। दूसरे दिन रावण ने धूम्राक्ष को युद्ध के लिए भेजा। धूम्राक्ष एक बड़ी सेना लेकर युद्ध करने के लिए आया तो हनुमान ने उसे चारों खाने चित्त गिरा दिया। तीसरे दिन रावण ने वज्रदंष्ट्र को रणक्षेत्र में भेजा। वज्रदंष्ट्र बड़ी वीरता से लड़ा परन्तु अंगद के सामने उसकी एक न चली। अंगद ने उसके घोड़ों को मार और रथ को चकनाचूर कर उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। राक्षस-सेना परास्त होकर भाग गई। चौथे दिन अकम्पन युद्ध के लिए निकला। उसने ऐसा घमासान युद्ध किया कि रक्त की नदियाँ बह गई। अकम्पन की मारकाट से वानर-सेना में भगदड़ मच गई। यह देख हनुमानजी अकम्पन पर झपटे। अकम्पन ने 14 बाण मारकर हनुमान को घायल कर दिया। हनुमानजी ने भी एक वृक्ष उठाकर अकम्पन के सिर पर दे मारा जिससे वह भूमि पर गिर पड़ा और मारा गया।

रावण ने जब पासों को इस प्रकार पलटते देखा तो वह बहुत दुःखी हुआ। मोर्चाबन्दी देखने के लिए वह लंका के चारों ओर घूमा और लंका को चारों ओर से वानरों द्वारा घिरी देखकर रावण ने अपने सेनापति प्रहस्त को युद्ध करने की आज्ञा दी। पाँचवे दिन प्रहस्त राक्षसी सेना के साथ युद्ध के लिए चला। जीतने की इच्छा से दोनों सेनाएँ भिड़ गई। दोनों ओर से भयंकर अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा होने लगी। वानर-सेना को पीछे हटते देख नील प्रहस्त के सम्मुख आया। नील ने प्रहस्त के घोड़ों को मार डाला फिर उसका धनुष छीनकर तोड़ डाला। पुनः एक मूसल उठाकर उसके सिर पर दे मारा जिससे वह मारा गया। जब रावण ने प्रहस्त की मृत्यु का समाचार सुना तो वह बहुत दुःखी हुआ परन्तु साथ ही छठे दिन उसने स्वयं युद्ध में जाने का निश्चय किया।

# 18. रावण से युद्ध और उसकी पराजय

रावण को अपनी सेना की ओर आते देख श्रीराम ने विभीषण से पूछा कि यह सेना किसकी है? विभीषण ने कहा कि आज राक्षसराज रावण स्वयं युद्ध करने के लिए आ रहा है। रावण को देख श्रीराम ने कहा कि सचमुच राक्षसराज रावण बड़ा कान्तिमान् और प्रतापी है। रश्मियों से चमकने वाले सूर्य की भाँति इसकी ओर कोई ताक नहीं सकता। मेरे सौभाग्य से यह दुष्टात्मा आज मेरे सामने आ गया है। आज मैं सीताहरण का क्रोध इस पर निकालूँगा। फिर वे अपना धनुष-बाण उठा युद्ध के लिए तैयार हो गये। रावण को निकट आते देख सर्वप्रथम सुग्रीव उस पर झपटे, परन्तु रावण ने शीघ्र ही सुग्रीव को घायल कर दिया। अब लक्ष्मण रावण के सामने आकर डटे। उधर हनुमानजी लक्ष्मण से पूर्व ही रावण पर टूट पड़े।

रावण ने हनुमान की छाती में एक ऐसी चपेट मारी कि हनुमान् चक्कर खाने लगे। परन्तु उन्होंने तुरन्त संभलकर रावण को एक ऐसा थप्पड़ लगाया कि रावण विचलित हो गया। सावधान होने पर उसने कहा हे वानर! शत्रु होने पर भी तेरा बल-वीर्य प्रशंसनीय है। यह सुनकर हनुमानजी ने कहा कि अरे रावण! धिक्कार है मेरे बल-वीर्य को जो तू मेरा थप्पड़ खाकर भी अभी तक जीवित है। हनुमान के इन जले कटे वचनों को सुनकर रावण ने उसे घायल करके पृथिवी पर डाल दिया। अब नील सामने आया। रावण ने उसे एक ही बाण से मूर्च्छित कर धरती पर सुला दिया और बढ़कर लक्ष्मण पर वार किया। वाग्युद्ध के पश्चात् दोनों शस्त्र-युद्ध करने लगे। लक्ष्मण ने रावण के अस्त्र-शस्त्रों को आकाश में ही काटकर उसके धनुष को भी काट डाला। रोष में भरकर रावण ने एक शक्ति का प्रयोग किया जिससे लक्ष्मण जी मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। रावण ने लक्ष्मण को अपने रथ में डालकर लंका में ले जाना चाहा परन्तु ठीक समय पर हनुमानजी आ गये। उन्होंने अपने प्रबल प्रहारों से रावण को मूर्च्छित कर दिया तथा लक्ष्मण को उठाकर रामदल में ले गये।

रावण द्वारा वानर-सेना का संहार होते देख श्रीराम रावण के सम्मुख आये। श्रीराम ने अपना अद्‌भुत युद्ध-कौशल दिखाते हुए रावण के रथ के टुकड़े कर डालें उसके घोड़े और सारथी को भी मार गिराया और रावण के चमचमाते मुकुट को भी काट डाला। संध्या समय निकट देख श्रीराम ने रावण से कहा कि प्रातःकाल से घोर युद्ध करते हुए आपने बड़े वीरत्व का परिचय दिया है। आज आपके द्वारा हमारी सेना के बहुत से वीर मारे अथवा घायल किये गये हैं। अत्यन्त थके होने के कारण आपका वध करना बहुत सरल है, परन्तु थके हुए शत्रु का वध करना आर्य मर्यादा के विरुद्ध है। अतः अब आप घर जाइये। जब स्वस्थ होकर कल आप पुनः युद्ध में आयेंगे जब मैं आपका युद्धोचित स्वागत करूँगा। श्रीराम शत्रु थे। परन्तु कितने आदर्श शत्रु थे! रावण भी मन-ही-मन श्रीराम के शील और पराक्रम की प्रशंसा करता हुआ नगर में प्रविष्ट हुआ और श्रीराम अपने डेरे में पहुँच लक्ष्मण के उपचार में लगे।

## 19. कुम्भकर्ण का पराक्रम

रावण अपनी पराजय से बड़ा दुःखी हुआ। उसने अपने मन्त्रिमण्डल से परामर्श कर अगले दिन का सेनापति पद कुम्भकर्ण को सौंपा। अगले दिन एक भयंकर राक्षसी सेना लेकर कुम्भकर्ण युद्धक्षेत्र की ओर चला। कुम्भकर्ण को आते देख वानरी सेना भागने लगी। सेना को भागते देख अंगद ने कहा कि हे वानरो! तुम्हारी कायरता पर तुम्हारी स्त्रियाँ हँसेंगी और उनकी यह हँसी तुम्हारे लिए मृत्यु के समान होंगी। तुम महान् कुलों में उत्पन्न हुए हो। अतः हे वानरो! तुम भयभीत होकर साधारण वानरों की भाँति कहाँ भागे जाते हो? तुम लोग अपने बल को भूलकर भय से त्रस्त हो गये हो। अतः निश्चय ही तुम बड़े नीच हो।

इस प्रकार समझा-बुझाकर और जोश दिलाकर अंगद ने उन्हें

लौटाया। परन्तु कुम्भकर्ण की शस्त्र वर्षा के सामने सबके छक्के छूट रहे थे। कुम्भकर्ण को वानरी सेना पर झपटते देख हनुमानजी उससे जूझ पड़े। कुम्भकर्ण ने एक शूल का प्रहार कर हनुमानजी को व्यथित कर दिया। जब नील आगे बढ़ा। परन्तु कुम्भकर्ण ने थोड़ी ही देर में उसे भी घायल कर दिया। पुनः अंगद सम्मुख आया परन्तु कुम्भकर्ण ने एक घूंसा मारकर उसे भी मूर्च्छित कर दिया। अंगद के मूर्च्छित होने पर कुम्भकर्ण शूल उठाकर सुग्रीव के ऊपर लपका और एक शृंग का वार कर उसे घायल एवं मूर्च्छित कर दिया। फिर मूर्च्छित सुग्रीव को उठा कुम्भकर्ण लंका की ओर चला। लंका के जल-सिंचित राजमार्ग की जरावट से जब सुग्रीव की मूर्च्छा टूटी तो वे उछलकर कुम्भकर्ण के चंगुल से निकल युद्ध-स्थल की ओर भागे।

सुग्रीव का पीछा करता हुआ कुम्भकर्ण भी पुनः युद्ध-क्षेत्र में आ डटा। लक्ष्मण कुपित होकर कुम्भकर्ण से युद्ध करने लगे। थोड़ी ही देर में लक्ष्मण ने भीषण शर-वर्षा करके कुम्भकर्ण का सारा शरीर बेध-डाला। लक्ष्मण की रणचातुरी देख कुम्भकर्ण ने कहा कि हे लक्ष्मण! तुमने बालक होने पर भी आज अपने बल एवं पराक्रम से मुझे संतुष्ट कर दिया है। अब मैं तुम्हारी आज्ञा लेकर श्रीराम के पास जाना चाहता हूँ।

यह कह कर कुम्भकर्ण श्रीराम की ओर दौड़ा। श्रीराम और कुम्भकर्ण में भीषण युद्ध छिड़ गया। श्रीराम ने भयंकर बाण वृष्टि के पश्चात् वायव्यास्त्र चलाकर उसकी दायीं भुजा काट डाली। अब कुम्भकर्ण एक हाथ से ही लड़ने लगा, परन्तु श्रीराम ने एन्द्रास्त्र से उसकी दूसरी भुजा भी काट डाली। भुजाओं के कट जाने पर भी वह राक्षस आगे बढ़ता ही जाता था। अतः श्रीराम ने दो चन्द्राकार बाण मारकर उसके दोनों पैर भी काट डाले। फिर उसके मुख को बाणों से भरकर और एन्द्रास्त्र चलाकर उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया। अपने भाई कुम्भकर्ण के मरने का समाचार सुनकर रावण शोक से मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

रावण को शोक-संतप्त देख त्रिशिरा ने राम और लक्ष्मण के वध का बीड़ा उठाया। त्रिशिरा के साथ देवान्तक, नरान्तक और अतिकाय भी उत्साहपूर्वक युद्ध के लिए चले। दोनों ओर से प्रचण्ड युद्ध हुआ। बहुत सारी सेना खेत रही। युद्ध करते-करते सायंकाल तक अंगद ने नरान्तक को, हनुमान ने देवान्तक और त्रिशिरा को तथा लक्ष्मणजी ने अतिकाय को मार दिया। इन राक्षसों के साथ रावण पक्ष के प्रमुख राक्षस योद्धा समाप्त हो गये। इन योद्धाओं के मारे जाने का समाचार सुनकर रावण बहुत दुःखी हुआ। पिता को शोकाकुल देख दूसरे दिन मेघनाद राम और लक्ष्मण के वध का संकल्प कर एक विशाल वाहिनी के साथ रणक्षेत्र की ओर चला।

बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। अपनी घनघोर वाण वृष्टि से मेघनाद वानर सेना को पृथिवी पर सुलाने लगा। मेघनाद ने बारी-बारी से गन्धमादन, नल, मयन्द, जाम्बवान्, सुग्रीव, अंगद आदि वानर योद्धाओं को विदीर्ण कर उसने राम और लक्ष्मण के ऊपर भीषण शर वृष्टि की और उन्हें भी मूर्च्छित करके भूमि पर गिरा दिया। दोनों भाइयों को मृतक जान सिंहनाद करता हुआ और अपनी विजय का डंका बजाता हुआ मेघनाद लंका में चला गया। श्रीराम और लक्ष्मण को मूर्च्छित और सारी वानर-सेना को किंकर्तव्यविमूढ़ देख जाम्बवान ने हनुमानजी को ऋषभक पर्वत से मृतसंजीवनी बूटी लाने के लिए भेजा। हनुमानजी को जब उस पर्वत-शिखर पर पहुँचे तो उनकी समझ में नहीं आया कि इस औषधि के पत्ते चाहिऐ अथवा जड़ या पुष्प। अतः उन्होंने बहुत सारी बूटी जड़-समेत उखाड़ ली और लंका जा पहुँचे। उन दिव्य औषधियों की गंध सूँघने से दोनों भाई और वानर स्वस्थ हो गये।

इसके पश्चात् सुग्रीव के आदेशानुसार वानर-दल लंका में घुस गया और लंका में आग लगाने लगा। इस अग्निकांड से लंका में हाहाकार मच गया। वह आग राक्षसों के लिए कालरात्रि के समान हो गई। यह दशा देख रावण ने कुम्भकर्ण के पुत्र कुम्भ और निकुम्भ को

युद्ध के लिए भेजा। भयंकर नर-संहार हुआ और सायंकाल तक कुम्भ को सुग्रीव ने और निकुम्भ को श्रीराम ने मार डाला। कुम्भ और निकुम्भ के मारे जाने पर रावण ने खूर के पुत्र मकराक्ष को युद्ध के लिए भेजा। परन्तु श्रीराम ने उसको भी मार डाला।

## 20. मेघनाद का रणकौशल और वध

मकराक्ष के मारे जाने पर रावण दाँत पीसने लगा। अन्त में उसने अपने पुत्र मेघनाद को युद्ध करने की आज्ञा दी। मेघनाद विजययान सम्पादन करके अदृश्य होने वाले रथ में आरूढ़ हो तथा ब्रह्मास्त्र आदि से सुसज्जित होकर रणक्षेत्र की ओर चला। मेघनाद ने अदृश्य रहकर ही श्रीराम-लक्ष्मण पर बाण-वर्षा की। श्रीराम और लक्ष्मण भी दिव्यास्त्रों का प्रयोग कर रहे थे, परन्तु मेघनाद के दिखाई न देने से उन्हें कठिनाई अनुभव हो रही थी। अतः श्रीराम उसके वध के लिए किसी भयंकर अस्त्र के प्रयोग करने पर विचार करने लगे। मेघनाद श्रीराम का अभिप्राय जान युद्ध बंद कर लंका में चला गया।

थोड़ी देर पश्चात् वह सीता की एक मूर्ति अपने रथ में रख पुनः युद्ध-भूमि में आया और वानरी सेना के सम्मुख उस मूर्ति का सिर काट दिया। यह देख वानर-सेना बहुत दुःखी हुई। जब राम ने सीता-वध का समाचार सुना तो वे भी शोकसागर में डूब गये। राम को शोकाकुल देख विभीषण ने कहा, वह सीता तो बनावटी थी। वानरों को धोखा देकर वह विजय-यज्ञ करने गया है। उसका विजय-यज्ञ पूरा होने से पूर्व ही उसे मार देना चाहिये। अतः आप लक्ष्मणजी उसका वध करने के लिए भेजिए। श्रीराम का आदेश पा अस्त्र-शस्त्रों से सन्नद्ध हो और एक विशाल वाहिनी लेकर लक्ष्मण, विभीषण के साथ मेघनाद के वध के लिए चले। मन्दिर के निकट पहुँचकर लक्ष्मण ने बाणवृष्टि कर राक्षसी सेना को तितर-बितर कर दिया। राक्षसी सेना का संहार होते देख मेघनाद यज्ञ को अपूर्ण छोड़ उठ खड़ा हुआ और युद्ध के लिए

अपने रथ में सवार हो गया ।

उसे देखते ही लक्ष्मण ने उसे युद्ध के लिए आहूत किया । दोनों ओर से अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार होने लगे । दोनों वीर एक-दूसरे को जीतने के लिए प्राणपण से युद्ध करने लगे । रुधिर की धाराएँ बह निकली । लक्ष्मण ने अपना रण-कौशल दिखाते हुए मेघनाद के सारथी को धराशायी कर दिया । फिर उसके घोड़ों को मार डाला और रथ को भी तोड़ दिया । अब मेघनाद पैदल ही युद्ध करने लगा । इसी बीच वह चातुरी से लंकापुरी में चला गया और शीघ्र ही एक स्वर्ण-भूषित रथ में आरूढ़ हो पुनः युद्धक्षेत्र में लौट युद्ध करने लगा । लक्ष्मण भी बड़ी वीरता से उसका साम्मुख्य करने लगे । उन्होंने उसका धनुष काट दिया, फिर उसके सारथी को मारकर उसका रथ भी भस्म कर दिया । मेघनाद रथ से कूदकर पैदल ही युद्ध करने लगा । अब लक्ष्मण ने मेघनाद को यमपुरी भेजने का निश्चय कर एन्द्रास्त्र को धनुष पर चढ़ाया और यदि दशरथनन्दन श्रीराम धर्मात्मा, सत्यवादी और अद्वितीय पराक्रमी हों तो यह बाण मेघनाद को मार डाले । ऐसा कहकर उन्होंने तीर छोड़ दिया । तीर ठिकाने पर लगा और मेघनाद मारा गया ।

## 21. रावण से युद्ध और उसकी मृत्यु

मेघनाद का वध होते ही विभीषण और हनुमान आदि लक्ष्मण की जय-जयकार करने लगे । रावण ने जब मेघनाद के मारे जाने का समाचार सुना तो वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा । रावण नितान्त अकेला रह गया । अब उसने स्वयं युद्ध की ठानी । उसके मंत्री सुपार्श्व ने कहा आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है । अतः आज ही युद्ध की तैयारी कर कल अमावस्या को विजय-यात्रा करो । ब्रह्मास्त्र और ब्रह्मकवच से सुसज्जित और स्वर्णरथ में आरूढ़ हो तथा बची-खुची सेना को लेकर रावण युद्धक्षेत्र में आया । रावण ने भीषण शरवृष्टि कर रामदल में खलबली मचा दी । वह वानर सेना को गाजर-मूली की भाँति काटता

हुआ श्रीराम और लक्ष्मण के सम्मुख पहुँचा। पहले उसने तामसास्त्र का प्रयोग कर सारी वानर सेना को दग्ध कर डाला। फिर दश बाण मारकर श्रीराम के मर्मस्थलों को बींध डाला। श्रीराम ने भी बहुत से बाण मारकर रावण के शरीर को छेद डाला।

इसी बीच लक्ष्मण ने भी क्रोध में भरकर रावण के रथ की ध्वजा को काट डाला, सारथी का सिर धड़ से अलग कर दिया और धनुष को भी तोड़ डाला। विभीषण ने रावण के रथ के चारों घोड़े मार गिराये। घोड़ों के मरने पर रावण रथ से कूद पड़ा और विभीषण पर एक तेजस्वी शक्ति का प्रहार किया। उस शक्ति को विभीषण की ओर आते देख लक्ष्मण सामने आ गये। रावण द्वारा छोड़ी वह शक्ति लक्ष्मणजी के शरीर को बेधती हुई पार निकल गई और वे मूर्च्छित हो पृथिवी पर गिर पड़े।

भाई की यह अवस्था देख श्रीराम भ्रातृस्नेहवश उदास हो गये। फिर सुग्रीव और हनुमान को उनकी निगरानी के लिए नियुक्त कर श्रीराम ने अद्‌भुत पराक्रम दिखाते हुए भीषण युद्ध किया। श्रीराम की बाण-वर्षा से व्याकुल हो रावण युद्ध छोड़ भाग खड़ा हुआ। लक्ष्मण की चिन्ताजनक अवस्था को देख श्रीराम विलाप करते हुए कहने लगे–

**अब मैं राज्य लेकर क्या करूँगा और मेरे जीने से भी क्या लाभ? अब मुझे रावण से युद्ध करने की भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि लक्ष्मण तो अब समर-भूमि में सो रहा है। स्त्री और बन्धुबांधव तो सब जगह मिल जाते हैं, परन्तु ऐसा कोई स्थान दिखाई नहीं देता जहाँ सहोदर भाई मिल सके।**

श्रीराम को इस प्रकार दुःखी और व्याकुल देखकर सुषेण उन्हें धैर्य और सान्त्वना प्रदान करते हुए हनुमान से बोले हे वीर! तुम शीघ्र जाम्बवान् द्वारा बताये ऋषभ पर्वत पर जाओ और वहाँ से विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवनी और सन्धानकरणी बूटियों को लेकर सूर्योदय से पहले यहाँ पहुँच जाओ। अन्यथा लक्ष्मणजी की जीवनरक्षा कठिन हो जायेगी। सुषेण का आदेश पा हनुमानजी शीघ्र

ही पर्वत पर जा पहुँचे परन्तु वहाँ उन बूटियों को न पहचान सकने के कारण उन्होंने नाना प्रकार के पुष्पित वृक्षों को पूरा ही उखाड़ लिया और फिर सूर्योदय से पूर्व ही रामदल में पहुँच गये ।

बूटियों की मात्रा इतनी अधिक थी कि उन्हें देखकर सुषेण कहने लगे, ''अरे ! तुम तो पर्वत-का-पर्वत ही उठा लाये ।'' वस्तुतः हनुमान पर्वत उठा कर नहीं लाये थे । यह तो एक मुहावरा है । आज भी तो इस प्रकार के प्रयोग होते हैं । जब बच्चे शोर करते हैं तो माताएँ बच्चों से कहती हैं, अरे ! तुमने तो घर ही सिर पर उठा रखा है । वस्तुतः घर उनके सिर पर नहीं होता । सुषेण ने उन बूटियों का प्रयोग किया । उन बूटियों को सूँघते ही लक्ष्मणजी के घाव भर गये और वे स्वस्थ हो गये । श्रीराम ने उनका आलिंगन किया और वानरों ने हर्षनाद किया ।

प्रातःकाल रावण पूर्ण साज-सज्जा के साथ रथारूढ़ हो युद्धक्षेत्र में आया । उधर इन्द्र ने अपने सारथी मातलि को अपना रथ देकर श्रीराम के पास भेजा । इन्द्र का सम्मान करते हुए राम रथ में सवार हो गये । दोनों ओर से भीषण अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होने लगा । यह युद्ध इतना भयंकर, अपूर्व, अद्‌भुत एवं रोमांचकारी था कि स्वयं आदिकवि बाल्मीकि ने उसका वर्णन करते हुए कहा है कि जिस प्रकार आकाश की उपमा आकाश ही है और सागर की उपमा सागर ही है, उसी प्रकार राम और रावण के युद्ध की उपमा राम और रावण युद्ध ही है । युद्ध में राम को विजय प्राप्त होते न देख इन्द्र सारथि मातलि ने कहा हे वीर ! आप ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कीजिये । मातलि की बात सुन श्रीराम ने अपने धनुष पर ब्रह्मास्त्र का सन्धान कर उसे रावण के ऊपर छोड़ा । महावेग से छूटा हुआ वह वाण रावण के हृदय को बेधता हुआ पार निकल गया । रावण वीरगति को प्राप्त हो गया । भाई को भूमि पर पड़ा देख विभीषण विलाप करने लगा । विभीषण को सान्त्वना देते हुए श्रीराम ने कहा–

**रावण युद्ध करते हुए वीरगति को प्राप्त हुआ है । अतः वह शोक करने के योग्य नहीं है ।**

उसकी अन्त्येष्टि का आदेश देते हुए श्रीराम ने कहा—मरने तक ही वैर रहता है। अब हमारा प्रयोजन सिद्ध हो चुका है। अतः अब यह जैसा तुम्हारा भाई है वैसा ही मेरा भी है। अतएव इसका यथोचित संस्कार कीजिये। कैसा उच्च और महान् आदर्श है! जो लोग आज भी रावण को जलाते हैं उन्हें श्रीराम के उपर्युक्त शब्दों पर ध्यान देते हुए इस निंदनीय कर्म से दूर रहना चाहिये। रावण की अन्त्येष्टि के पश्चात् श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण ने विभीषण को लंका के राज्य-सिंहासन पर बैठाकर समुद्रजल से उनका अभिषेक किया।

## 22. सीता की अग्नि परीक्षा

श्रीराम की आज्ञानुसार हनुमान अशोकवाटिका में गये और सीता को रावण-वध तथा श्रीराम-विजय का आद्योपान्त विवरण सुना आये। पुनः विभीषण सीता को एक पालकी में बैठाकर श्रीराम के सम्मुख लाये। सीता को देखकर श्रीराम बोले—

**हे भद्रे! मैंने युद्ध में शत्रु को परास्त कर तुम्हें पुनः प्राप्त कर लिया है। पुरुषार्थ से जो कुछ किया जा सकता था वह मैंने कर दिखाया। मुझे तुम्हारे चरित्र में सन्देह उत्पन्न हो गया है। तुम्हारे लिए ये दशों दिशायें खुली पड़ी हैं। तुम जहाँ चाहो जा सकती हो। वानरेन्द्र सुग्रीव अथवा राक्षसेन्द्र विभीषण में जिसके यहाँ तुम रहना चाहो अथवा जहाँ तुम्हें सुख मिलने की आशा हो वहाँ रह सकती हो।**

श्रीराम के इन कठोर वचनों को सुन सीता ने निर्भयतापूर्वक कहा कि हे वीर! तुम ऐसी अनुचित, कर्णकटु और रूखी बातें क्यों कहते हो जैसे कोई गँवार पुरुष अपनी गँवार स्त्री से कहता हो? हे महाबाहो! तुमने मुझे जैसा समझ रखा है मैं वैसी नहीं हूँ। तुम मेरे ऊपर विश्वास रखो। मैं अपने पतिव्रत धर्म की शपथ खाकर यह बात तुमसे कहती हूँ। फिर वे लक्ष्मण से बोलीं, ''मेरे लिए शीघ्र ही एक चिता तैयार करो।'' जब चिता तैयार हो गई और सीता अपने प्राण

त्यागने के लिए उसमें कूदने लगी तो यक्षराज कुबेर, शत्रुदमनकारी यम, देवराज इन्द्र, महाराज वरुण, महादेव और ब्रह्मा आदि अपने विमानों में आरूढ़ हो श्रीराम के पास पहुँचे और अपनी भुजाओं को उठाकर बोले, हे राम ! ज्ञानियों में श्रेष्ठ होकर भी तुम अग्नि में गिरती हुए सीता की उपेक्षा क्यों कर रहे हो ?'' फिर सीताजी को अपनी गोद में उठाकर महर्षि अग्निदेव बोले –

**हे राम ! यह सीता तुम्हारी है । इसमें मन, वचन, बुद्धि और नेत्र किसी भी प्रकार से पाप नहीं है ।**

अग्निदेव के इन वचनों को सुन श्रीराम परम प्रसन्न हुए । उनकी आँखों में आँसू उमड़ पड़े । वे गद्‌गद् हो अग्निदेव से बोले निश्चय ही सीताजी सर्वथा पवित्र हैं । किन्तु यह सौभाग्यवती बहुत दिनों तक रावण के रनिवास में रही हैं । यदि मैं इनकी शुद्धता की परीक्षा न करता तो सब लोग यही कहते कि महाराज दशरथ का पुत्र राम बड़ा कामी और अनाड़ी है । जनकनन्दिनी सीता सर्वथा शुद्ध है । मैं इन्हें वैसे ही नहीं त्याग सकता जैसे यशस्वी पुरुष अपने यश को नहीं छोड़ सकता । प्रभुकृपा से जब सीता लगभग एक वर्ष पश्चात् रावण की कैद से लौटकर श्रीराम के पास आई । इसके उपरांत उसको एक अग्नि परीक्षा में से गुजरना पड़ा । इसका भाव यह है कि नीति कुशल श्रीराम ने अग्नि नामक आचार्य के आचार्यत्व में सीता जी का शुद्ध संस्कार कराके उसे ग्रहण किया था । परन्तु कई पौराणिक भाइयों का विचार है कि सीता अग्नि में प्रवेश हुई और फिर बच गई । परन्तु यह सत्य नहीं है क्योंकि यह असम्भव एवं सृष्टिक्रम के विरुद्ध है ।

## 23. अयोध्या वापिसी और भरतमिलाप

दूसरे दिन विभीषण से विदा माँगते हुए श्रीराम ने कहा, मैं शीघ्रातिशीघ्र अयोध्या लौट जाना चाहता हूँ परन्तु मार्ग बहुत लम्बा और दुर्गम है । यह सुन विभीषण ने कहा कि मैं आपको दिव्य, उत्तम

और तीव्रगामी पुष्पक विमान द्वारा जिसे रावण ने कुबेर से छीना था, एक ही दिन में अयोध्या पहुँचा दूँगा परन्तु कृपा करके आप एक दिन और यहाँ रहिए जिससे मैं आपका आदर-सत्कार कर लूँ?

यह सुन श्रीराम बोले, कि हे सौम्य! तुम्हारी सहायता से ही मेरा आदर-सत्कार हो चुका। अब तो मेरा मन भरत से मिलने के लिए आतुर हो रहा है। अतः आप शीघ्र ही विमान मँगवाएँ। आदेशानुसार विभीषण ने पुष्पक विमान लाकर खड़ा कर दिया और बोले कि हे श्रीराम! मेरे योग्य और कोई सेवा? श्रीराम लक्ष्मण से परामर्श कर बोले विभीषण! इन वानरों ने युद्ध में बड़ी वीरता दिखाई है। इन्हीं के कारण मैं विजयी हुआ हूँ। अतः आप धन, रत्न आदि द्वारा इनका सत्कार कीजिये। आज्ञा पाते ही विभीषण ने वानर-यूथपतियों को उनके पद और मर्यादा के अनुसार रत्न, धन आदि देकर सन्तुष्ट किया। लक्ष्मण और सीता सहित श्रीराम विमान में बैठ सबको धन्यवाद दे विदा माँगने लगे। तब विभीषण और वानर-यूथपों ने उनके साथ अयोध्या जाने की प्रार्थना की। श्रीराम की अनुमति पा विभीषण और सुग्रीव अपने अमात्यों और विशिष्ट सैनिकों सहित विमान में बैठ गये।

श्रीराम के आदेश पर हंसों से युक्त वह विमान आकाश में उड़ता हुआ घोर शब्द करने लगा। श्रीराम ने सीता को आकाश से ही लंका का रणक्षेत्र, समुद्र और किष्किन्धा को दिखलाया। किष्किन्धा को देख सीताजी ने सुग्रीव की स्त्री को भी अयोध्या ले चलने की प्रार्थना की। श्रीराम ने विमान को नीचे उतरवाकर सुग्रीव से अपनी स्त्रियों को लाने के लिए कहा। सुग्रीव की आज्ञा पाकर स्त्रियाँ शीघ्र ही आ गईं और विमान फिर आकाश में उड़ने लगा। श्रीराम सीताजी को ऋष्यमूक, पम्पा सरोवर, अगस्त्य आदि के आश्रम, चित्रकूट तथा गंगा आदि को दिखाते हुए वनवास के 14 वर्ष पूर्ण होने पर चैत्रशुक्ला पंचमी के दिन महर्षि भरद्वाज के आश्रम में पहुँचे और उन्हें यथाविधि प्रणाम किया। श्रीराम को वहाँ अयोध्या के सब समाचार मिल गये।

फिर भी भरत की चिन्ता से श्रीराम ने अपने कुशलपूर्वक लौटने का समाचार देकर हनुमान को अयोध्या भेज दिया। हनुमान के मुख से श्रीराम के आगमन का वृत्तान्त सुनकर भरत जी गद्‌गद् हो गये।

भरतजी के आदेशानुसार अयोध्या नगरी को नववधू की भाँति सजाया गया। सड़कों पर सुगंधित एवं शीतल जल का छिड़काव किया गया। स्थान-स्थान पर ध्वज और झण्डियां लगाई गईं। नाना प्रकार के बाजे बजवाये गये। अयोध्या से नन्दीग्राम तक सभी मार्गों को खूब सजाया गया। सारी तैयारियाँ हो जाने पर मंत्री, प्रमुख सैनिक, ब्राह्मण और प्रधान वैश्य हाथियों और घोड़ों पर बैठकर कौशल्या आदि रथों में बैठकर नन्दिग्राम पहुँचे। श्रीराम का स्वागत करने के लिए राम द्वारा प्रदत्त खड़ाउओं को अपने शीश पर रखे हुए भरतजी आगे-आगे चले।

सबकी आँखें आकाश की ओर लगी हुई थीं। आकाश में पुष्पक विमान को देखकर हनुमान ने श्रीराम के आगमन का संकेत किया। हनुमान के मुख से श्रीराम का नाम सुनते ही 'श्रीरामचन्द्र जी आ गये' का घोष गगन में व्याप्त हो गया। बाजों और गाजों की ध्वनि से आकाश गूँज उठा। पुष्पक विमान नीचे उतरा। श्रीराम आदि भी पुष्पक विमान से नीचे उतरे। भरत ने राम के चरण छूकर प्रणाम किया और श्रीराम ने उन्हें हृदय से लगाया। फिर भरत ने अपना नाम उच्चारण करते हुए लक्ष्मण और सीता को प्रणाम किया। पुनः भरत सुग्रीव, जाम्बवान्, अंगद, मयन्द, द्विविद, विभीषण आदि से मिले। श्रीराम जब अपने से बड़ों और पूज्यों को प्रणाम करते हुए नगर-निवासियों के सामने आये तो उन्होंने कहा कि हे कौशल्यानन्द वर्धन! आपका यहाँ आना मंगलकारी हो।

जब श्रीराम नगरवासियों का अभिनन्दन ग्रहण कर चुके तब भरत ने चित्रकूट से लाये हुए खड़ाउओं के जोड़े को अपने हाथ से श्रीराम के चरणों में पहना दिया और बोले कि आज मेरा जन्म सफल और मनोरथ पूरा हुआ क्योंकि आज मैं अयोध्या के महाराज को

अयोध्या में लौटा देख रहा हूँ। अब आप अपने कोष, धान्यशाला, पुर और सेना का निरीक्षण कीजिए। आपके प्रताप से मैंने इन सबको पहले से दसगुणा बढ़ा दिया है। जो राज्य मेरी माताजी ने मुझे दिया था मै। उसे बिना किसी शर्त के आपको वापिस देता हूँ। मैं इस भार को ढोने में असमर्थ हूँ। आप इसे संभालिये और प्रजा का रंजन कीजिये। श्रीराम ने भरत की प्रार्थना स्वीकार की। क्षौर कर्म, स्नान आदि से निवृत्त हो श्रीराम रथ में बैठ अयोध्या की ओर रवाना हुए। अयोध्या में पहुँचने पर श्रीराम का वैदिक मंत्रों से विधिवत् राज्याभिषेक हुआ। इस अवसर पर 1,00,000 गौएँ 30 करोड़ अशर्फियां ब्राह्मणों को दान दी गईं। सुग्रीव और अंगद को मणियों से जटित दो हार दिये गये। इस अवसर पर सीताजी ने हनुमान के उपकारों का स्मरण करते हुए अपने गले का हार उतारकर हनुमान को दे दिया। उस हार को पहनकर हनुमान् अत्यंत सुशोभित हुए। इनके अतिरिक्त अन्य जो बूढ़े और मुखिया वानर थे, उन्हें भी रत्न आदि देकर उनका यथोचित सत्कार कर सबको विदा किया।

## 24. राम राज्य

श्रीराम शत्रुओं को जीत कर भूमण्डल का शासन करने लगे। महर्षि बाल्मीकि ने रामराज्य का वर्णन निम्नलिखित शब्दों में किया है–

**श्रीराम के राज्य में स्त्रियां विधवा नहीं होती थीं। सर्पों से किसी को भय नहीं था और रोगों का आक्रमण भी नहीं होता था। राम राज्य में चोरों और डाकुओं का नाम तक नहीं था। दूसरे के धन को लेने की तो बात ही क्या, कोई उसे छूता तक नहीं था। राम-राज्य में बूढ़े बालकों का मृतक कर्म नहीं करते थे अर्थात् बालमृत्यु नहीं होती थी।**

राम-राज्य में सब लोग वर्णानुसार अपने धर्मकृत्यों का अनुष्ठान

करने के कारण प्रसन्न रहते थे। श्रीराम उदास होंगे, यह सोच कोई किसी का हृदय नहीं दुःखाता था। राम राज्य में वृक्ष सदा पुष्पों से लदे रहते थे। वे सदा फला करते थे। उनकी डालियाँ विस्तृत हुआ करती थीं। यथासमय वृष्टि होती थी और सुखस्पर्शी वायु चला करती थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कोई भी लोभी नहीं था। सब अपना-अपना कार्य करते हुए सन्तुष्ट रहते थे। राम-राज्य में सारी प्रजा धर्मरत और झूठ से दूर रहती थी। सब लोग शुभ लक्षणों से युक्त और धर्मपरायण होते थे। इस प्रकार श्रीराम ने 30 वर्ष, 1 मास और 20 दिन तक अयोध्या पर शासन किया।

अन्ततः इतना ही कहना काफी होगा कि मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम–

**अति बलवान, धर्मयुक्त, जितेन्द्रिय, बुद्धिमान, प्रियवक्ता, शत्रुओं के नाशक, वेदों के प्रकांड पंडित, धर्मज्ञ, सत्यवादी, परोपकारी धनुर्वेद में कुशल आर्य प्रियदर्शन, गम्भीरता से सागर के समान, धैर्य में हिमालय के समान, पराक्रम में विष्णु के तुल्य, क्रोध में कालग्नि के समान, क्षमा में पृथिवी के समान, दान करने में कुबेर के समान और सत्य बोलने में धर्म के समान थे। यहाँ तक कि उन्होंने कभी भी जीवन में अभाव की अनुभूति नहीं की और न ही कभी अपने अधिकारों की मांग की थी।**

मेरे कहने का तात्पर्य यह उनका चरित्र अत्यंत उत्तम व उज्ज्वल था। वे वस्तुतः महामानव थे। इसीलिए उनका नाम सदा के लिए अमर रहेगा तथा जनमानस के हृदयों पर राज्य करता रहेगा।

## लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. स्वामी रामतीर्थ

## लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक महाभारत
4. वैदिक गीता
5. अमर धर्मग्रंथ
6. अमर नीतिग्रंथ
7. पुराणपरिचय
8. ईश्वरसिद्धि
9. राष्ट्रभाषा हिन्दी
10. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
11. महावीर हनुमान
12. योगिराज श्रीकृष्ण
13. आदिशंकराचार्य
14. आचार्य चाणक्य
15. दस गुरु
16. आर्यसमाज के महामानव
17. संस्कार
18. शेर-ओ-शायरी
19. गीतांजलि
20. आर्यसमाज
21. ओ३म्
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब श्रेणियों के लिये)
25. **Great Thoughts**
26. **General English (Part I to V)**
    **(For All Classes)**